श्रमण सूक्त

संपादक

श्रीचन्द रामपुरिया

प्राक्कथन

श्रमण भगवान् महावीर का जन्म-नाम वर्द्धमान था। उन्होने ३० वर्ष की अवस्था मे गृह-त्याग कर मुनि जीवन अगीकार किया और तभी से कठोर-दीर्घ तपस्या, ध्यान और प्राय मौन-साधना मे जीवन को लगा दिया। वे शरीर की सार-सभाल नहीं करते थे। उसे आत्म-साधना के लिए न्यौछावर कर दिया— "वोसट्ठचत्तदेहे—मुत्तिमग्गेण अप्पाण भवेमाणे विहरई।" उल्लेख है कि तीर्थकरो मे सबसे उग्र तपस्वी वर्द्धमान थे—"उग्ग च तओकम्म विसेसओ वद्धमाणस्स।" बारह वर्ष से कुछ अधिक अवधि तक वे इसी तरह आत्म-साधना और चिन्तन मे लगे रहे।

इस साधना-काल मे उन्हे अनेक कष्ट उठाने पडे। वे सर्प आदि जीव-जतु और गीध आदि पक्षियो द्वारा काटे गये। हथियारो से पीटे गये। विषयातुर स्त्रियो ने उन्हे मोहित करने की चेष्टाए कीं। इन सभी स्थितियो मे वर्द्धमान आत्म-समाधि मे लीन रहे। लोग उनके पीछे कुत्ते लगा देते, उन्हे दुर्वचन कहते, लकडियो, मुट्ठियो, भाले की अणियो, पत्थर तथा हड्डियो के खप्परो से पीटकर उनके शरीर मे घाव कर देते। ध्यान अवस्था मे होते तब लोग उन पर धूल बरसाते, उन्हे ऊचा उठाकर नीचे गिरा देते, आसन पर से नीचे ढकेल देते।

वर्द्धमान ने इन सारे उपसर्गो और परीषहो को अदीन भाव से, अव्यथित मन से, अम्लान चित्त से, मन-वचन-काया को वश मे रखते हुए सहन किया। अनुपम तितिक्षा और समभाव का परिचय दिया। इसी कारण वर्द्धमान को लोग वीर-महावीर कहने लगे।

शिशिर ऋतु मे वर्द्धमान नगे बदन खुले मे ध्यान करते। ग्रीष्म ऋतु मे उत्कुटुक जैसे कठोर आसन मे बैठकर आताप-सेवन करते। निरोग होते हुए भी वे मिताहारी थे। रसो मे आसक्ति नहीं थी। आहार न मिलने पर भी शान्तमुद्रा और सन्तोष भाव रखते थे। शरीर के प्रति उनकी निरीहता रोमाचकारी थी। रोग की चिकित्सा नहीं करते थे। आखो मे किरकिरी गिर जाती तो उसे नहीं निकालते थे। शरीर मे खाज आती हो उसे नहीं खुजलाते थे। नींद अधिक नहीं लेते थे। नींद सताती तो चक्रमण कर उसे दूर करते थे। इन्द्रियो के विषय मे वे विरक्त रहते थे। किसी प्रकार की आसक्ति नहीं रखते, उनमे उत्सुकता नहीं रखते थे। वे अनेक तरह के आसन लगाकर निर्विकार बहुविध ध्यान ध्याते थे। चलते समय आगे की पुरुष-प्रमाण भूमि पर दृष्टि रखते थे। वे १५-१५ दिन, महीने-महीने उपवास किया करते थे। दीक्षा के बारहवे वर्ष मे वे निरन्तर छट्ठभक्त (दो-दो दिन का उपवास) करते रहे।

वर्द्धमान ने बारह वर्ष व्यापी दीर्घ साधना-काल मे धर्म-प्रचार, उपदेश-कार्य नहीं किया, न शिष्य मुडित किये और न उपासक बनाए, परन्तु अबहुवादी मौन साधना की। उन्होने अपना सारा समय जागरूकतापूर्वक आत्मशोधन मे लगाया। आत्म-साक्षी पूर्वक सयम धर्म का पालन किया।

मुनि जीवन के १३ वे वर्ष मे वर्द्धमान जभियग्राम नगर के बाहर ऋजुबालिका नदी के उत्तरी किनारे, श्यामाक गाथापति की कृषण भूमि मे व्यावृत नामक चैत्य के अदूर-समीप उसके ईशान कोण की ओर शाल वृक्ष के नीचे गोदोहिका आसन मे स्थित होकर सूर्य के ताप मे आताप ले रहे थे। उस दिन उनका दो दिन का उपवास था। ग्रीष्म ऋतु थी। वैशाख का महीना था। शुक्ला दशमी का दिन था। छाया पूर्व की ओर ढल चुकी थी और अन्तिम पौरुषी का समय था। उस निस्तब्ध शान्त वातावरण मे आश्चर्यकारी एकाग्रता के साथ वर्द्धमान शुक्लध्यान मे लवलीन थे। ऐसे समय विजय नामक

मुहूर्त मे उत्तरा फाल्गुनी योग मे प्रबल पुरुषार्थी भगवान ने घनघाती कर्मो का क्षय कर डाला और उन्हे केवल-ज्ञान और केवल-दर्शन प्राप्त हुए। वे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हुए। वर्द्धमान तीर्थंकर महावीर अथवा श्रमण भगवान के नाम से प्रख्यात हुए।

यह बताया जा चुका है कि वर्द्धमान ने १२ वर्ष के साधना-काल मे धर्मोपदेश नहीं दिया। उनका उपदेशक जीवन केवल-ज्ञान और केवल-दर्शन की प्राप्ति के बाद आरभ होता है। वे इसके बाद ३० वर्ष तक पैदल जनपद विहार करते हुए जन-जन को मङ्गलमय ऋजु धर्म का उपदेश देते रहे। उनका उपदेश था—

* एक बात से विरति करो और एक बात मे प्रवृत्ति। असयम से निवृत्ति करो और सयम आदि मे प्रवृत्ति।
* पाप करने वाले की दुर्गति होती है और आर्य-धर्म का पालन करने वाला सद्गति को प्राप्त होता है।
* अच्छे कृत्यो का फल अच्छा होता है और दुष्चीर्ण कृत्यो का फल बुरा।
* आत्मा की सतत् रक्षा करो, इसे दुष्कृत्यो से बचाओ। जो आत्मा सुरक्षित नहीं होती, वह बार-बार जन्म-मरण करती है और जो सुरक्षित होती है, वह सब दुखो से मुक्त हो जाती है।
* भाषाओ का ज्ञान, विद्याओ का आधिपत्य, रक्षक नहीं होते। सत्य की गवेषणा करो, उसकी शरण ग्रहण करो। वही त्राण है।
* कोई जीव मरण नहीं चाहता, सब जीना चाहते हैं, सबको जीवन प्रिय है। अत किसी प्राण का घात मत करो। सर्वप्राणियो के प्रति मैत्री का आचरण करो।
* उन्होने कहा—

  सम्यक्ज्ञान, सम्यक्दर्शन, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप—जीवन मे इन चारो के एक साथ सयोग से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

* सयम से आत्मा को सुरिक्षत करो, नए पापो से उसे आच्छादित मत होने दो। तप से पुराने आवरण को छिन्न करो। इस तरह सयम और तप के द्वारा आत्मा के शुद्ध स्वरूप को प्रकट कर सकोगे।

भगवान् महावीर ने उस समय की जन-भाषा मे उपदेश दिया। आज वह भाषा दुरूह प्रतीत होती है।

श्रमण-सूक्त चयनिका मे निर्ग्रंथ श्रमणो के मननयोग्य आचरणीय महावीर के उपदेशो का सकलन है। साथ मे सरल हिन्दी अनुवाद भी है। एक पृष्ठ पर एक ही विचार दिया गया है, जिससे उस पर पूरा ध्यान केन्द्रित हो सके और उसका सत्य सहजतया हृदयगम हो।

उक्त सकलन के बाद क्रमश ३६५ सूक्त–कण समाविष्ट हैं।

यह चयन दो आगमो के आधार पर है—(१) दशवैकालिक, एव (२) उत्तराध्ययन।

आशा है यह चयनिका साधु-साध्वियो के स्वाध्याय और मनन के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। साथ ही उन लोगो के लिए भी जो साधु-साध्वियो के आचार-विचार और चर्या को प्रामाणिक रूप से जानना चाहते हो।

कार्तिक कृष्णा १३
स २०५६

श्रीचन्द रामपुरिया

अनुक्रम

जहा दुमस्स पुप्फेसु
भमरो आवियइ रस।
न य पुप्फ किलामेइ
सो य पीणेइ अप्पय।।

एमेए समणा मुत्ता
जे लोए सति साहुणो।
विहगमा व पुप्फेसु
दाणभत्तेसणे रया।।

(दस १ २,३)

जिस प्रकार भ्रमर-द्रुम–पुष्पो से थोडा-थोडा रस पीता है, किसी भी पुष्प को म्लान नहीं करता और अपने को भी तृप्त कर लेता है—उसी प्रकार लोक मे जो मुक्त (अपरिग्रही) श्रमण साधु हैं वे दान-भक्त (दाता द्वारा दिये जाने वाले निर्दोष आहार) की एषणा मे रत रहते हैं, जैसे—भ्रमर पुष्पो मे।

२

वयं च वित्तिं लब्भामो
न य कोइ उवहम्मई।
अहागडेसु रीयति
पुप्फेसु भमरा जहा।।
(दस. १ : ४)

हम इस तरह से वृत्ति-भिक्षा प्राप्त करेंगे कि किसी जीव का उपहनन न हो। क्योंकि श्रमण यथाकृत (सहज रूप से बना) आहार लेते हैं, जेसे—भ्रमर पुष्पो से रस।

३

महुकारसमा बुद्धा
जे भवंति अणिस्सिया।
नाणापिंडरया दंता
तेण वुच्चति साहुणो।।

(दस. १ : ५)

जो बुद्ध पुरुष मधुकर के समान अनिश्रित हैं—किसी एक पर आश्रित नहीं, नाना पिंड में रत हैं और जो दान्त हैं वे अपने इन्हीं गुणों से साधु कहलाते हैं।

५

धिरत्थु ते जसोकामी
जो त जीवियकारणा।
वन्त इच्छसि आवेउ
सेय ते मरण भवे।।

(दस २ ७)

हे यशकामिन् ! धिक्कार है तुझे ! जो तू क्षणभगुर जीवन के लिए बनी हुई वस्तु को पाने की इच्छा करता है। इससे तो तेरा मरना श्रेय है।

७

तीसे सो वयणं सोच्चा
सजयाए सुभासिय।
अकुसेण जहा नागो
धम्मे सपडिवाइओ।।
(दस २ १०)

सयमिनी (राजीमती) के इन सुभाषित वचनो को सुनकर रथनेमि धर्म मे वैसे ही स्थिर हो गये, जैसे अकुश से नाग-हाथी होता है।

८

एव करेन्ति सबुद्धा
पण्डिया पवियक्खणा।
विणियट्टन्ति भोगेसु
जहा से पुरिसोत्तमो।।

(दस. २ · ११)

सम्बुद्ध पण्डित और प्रविचक्षण पुरुष ऐसा ही करते है। वे भोगो से वैसे ही दूर हो जाते है जैसे पुरुषोत्तम रथ नेमि हुए।

६

अजय चरमाणो उ
पाणभूयाइ हिसई।
बधई पावय कम्म
त से होइ कडुय फल।।

(दस ४ १)

अयतनापूर्वक चलने वाला श्रमण त्रस और स्थावर जीवो की हिंसा करता है। उससे पाप-कर्म का बध होता है। वह उसके लिए कटु फल वाला होता है।

१०

अजय चिट्ठमाणो उ
पाणभूयाइ हिसई।
बधई पावय कम्म
त से होइ कडुय फल।।
(दस ४ २)

अयतनापूर्वक खडा होने वाला श्रमण त्रस ओर स्थावर जीवो की हिंसा करता हे। उससे पाप-कर्म का वध होता है। वह उसके लिए कटु फल वाला होता है।

११

अजयं आसमाणे उ
पाणभूयाइ हिसई।
वधई पावय कम्म
त से होइ कडुय फल।।

(दस ४ ३)

अयतनापूर्वक वैठने वाला श्रमण त्रस और स्थावर जीवो की हिंसा करता हे। उससे पाप-कर्म का वध होता है। वह उसके लिए कटु फल वाला होता हे।

१२

अजय सयमाणो उ
पाणभूयाइ हिसई।
बधई पावय कम्म
त से होई कडुय फल।।

(दस ४ ४)

अयतनापूर्वक सोने वाला श्रमण त्रस और स्थावर जीवो की हिसा करता है। उससे पाप-कर्म का बध होता है। वह उसके लिए कटु फल वाला होता है।

१३

अजय भुजमाणो उ
पाणभूयाइ हिसई।
बधई पावय कम्म
त से होई कडुय फल।।

(दस ४ ५)

अयतनापूर्वक भोजन करने वाला श्रमण त्रस और स्थावर जीवो की हिंसा करता है। उससे पाप-कर्म का बध होता है। वह उसके लिए कटु फल वाला होता है।

१४

अजय भासमाणो उ
पाणभूयाइ हिंसई।
वधई पावय कम्म
त से होई कडुय फल।।

(दस ४ ६)

अयतनापूर्वक बोलने वाला श्रमण त्रस और स्थावर जीवो की हिंसा करता हे। उससे पाप-कर्म का बंध होता है। वह उसके लिए कटु फल वाला होता है।

१५

कह चरे कह चिट्ठे
कहमासे कह सए।
कह भुजतो भासतो
पाव कम्म न वधई।।

(दस ४ ७)

कैसे चले ? कैसे खडा हो ? कैसे वेठे ? कैसे सोये ? कैसे खाये ? कैसे वोले ? जिससे पाप-कर्म का वन्धन न हो।

१६

जय चरे जय चिट्ठे
जय-मासे जय सए।
जय भुजतो भासतो
पाव कम्म न बधई।।

(दस ४ ८)

यतनापूर्वक चलने, यतनापूर्वक खडा होने, यतनापूर्वक वैठने, यतनापूर्वक सोने, यतनापूर्वक खाने और यतनापूर्वक वोलने वाला श्रमण पाप-कर्म का बन्धन नहीं करता।

१७

सव्वभूयप्पभूयस्स
सम्म भूयाइ पासओ।
पिहियासवस्स दतस्स
पाव कम्म न वधई।।

(दस ४ ८)

जो सव जीवो को आत्मवत् मानता हे, जो सव जीवो को सम्यक्-दृष्टि से देखता है, जो आश्रव का निरोध कर चुका है और जो दान्त है, उस श्रमण के पाप-कर्म का वन्धन नहीं होता।

जया मुडे भवित्ताण
पव्वइए अणगारिय।
तया सवर-मुक्किट्ठ
धम्म फासे अणुत्तर।।

(दस ४ . १६)

जब मनुष्य मुड होकर अनगार-वृत्ति को स्वीकार करता है तब वह उत्कृष्ट सवरात्मक अनुत्तर धर्म का स्पर्श करता है।

२०

जया सव्वत्तग नाण

दंसण चाभिगच्छई।

तया लोगमलोग च

जिणो जाणई केवली।।

(दस ४ २२)

जब वह सर्वत्रगामी ज्ञान और सर्वत्रगामी दर्शन—केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त कर लेता है तब वह जिन ओर केवली होकर लोक-अलोक को जान लेता है।

२१

जया लोगमलोग च
जिणो जाणइ केवली
तया जोगे निरुंभित्ता
सेलेसि पडिवज्जई।।

(दस ४ २३)

जब वह जिन और केवली होकर लोक-अलोक को जान लेता है तब वह योगों का निरोध कर शैलेशी अवस्था को प्राप्त होता है।

२२

जया जोगे निरुंभित्ता
सेलेसिं पडिवज्जई।
तया कम्मं खवित्ताणं
सिद्धिं गच्छइ नीरओ।।

(दस ४ २४)

जब वह योग का निरोध कर शैलेशी अवस्था को प्राप्त होता है तब वह कर्मो का क्षय कर रज-मुक्त बन सिद्धि को प्राप्त करता है।

२३

जया कम्म खवित्ताण
सिद्धि गच्छइ नीरओ।
तया लोगमत्थयत्थो
सिद्धो हवइ सासओ।।

(दस ४ २५)

जब वह कर्मो का क्षय कर रज-मुक्त बन सिद्धि को प्राप्त होता है तब वह लोक के मस्तक पर स्थित शाश्वत सिद्ध होता है।

२४

सुहसायगस्स समणस्स
सायाउलगस्स निगामसाइस्स।
उच्छोलणापहोइस्स
दुलहा सुग्गइ तारिसगस्स।।

तवोगुणपहाणस्स
उज्जुमइ खतिसजमरयस्स।
परीसहे जिणतस्स
सुलहा सुग्गइ तारिसगस्स।।
(दस ४ · २६, २७)

जो श्रमण सुख का रसिक, सात के लिए आकुल, अकाल मे सोने वाला और हाथ, पेर आदि को वार-बार धोने वाला होता हे उसके लिए सुगति दुर्लभ हे।

जो श्रमण तपोगुण से प्रधान, ऋजुमति, क्षान्ति तथा सयम मे रत ओर परीषहो को जीतने वाला होता है उसके लिए सुगति सुलभ हे।

२५

इच्चेय छज्जीवणिय
सम्मद्दिट्ठी सया जए।
दुलह लभित्तु सामण्ण
कम्मुणा न विराहेज्जासि।।

(दस ४ २८)

दुर्लभ श्रमण-भाव को प्राप्त कर सम्यक्-दृष्टि और सतत सावधान श्रमण षड्जीवनिकाय की कर्मणा-मन, वचन और काया से विराधना न करे।

२६

सपत्ते भिक्खकालम्मि
असभतो अमुच्छिओ।
इमेण कमजोगेण
भत्तपाण गवेसए।।

(दस ५(१) . १)

भिक्षा का काल प्राप्त होने पर मुनि असभ्रात और अमूर्च्छित रहता हुआ इस आगे कहे जाने वाले क्रम-योग से भक्त-पान की गवेषणा करे।

२७

से गामे वा नगरे वा
गोयरग्गगओ मुणी।
चरे मंदमणुव्विग्गो
अव्वक्खित्तेण चेयसा।।

(दस ५(१) २)

गाव या नगर मे गोचराग्र के लिए निकला हुआ मुनि धीमे-धीमे अनुद्विग्न और अव्याक्षिप्त चित्त से चले।

२८

पुरओ जुगमायाए
पेहमाणो महिं चरे।
वज्जतो बीयहरियाइ
पाणे य दगमट्टियं।।

(दस ५(१) . ३)

आगे युग-प्रमाण भूमि को देखता हुआ और बीज, हरियाली, प्राणी, जल तथा सजीव मिट्टी को टालता हुआ चले।

२६

ओवायं विसम खाणु
विज्जल परिवज्जए।
सकमेण न गच्छेज्जा
विज्जमाणे परक्कमे।।

(दस ५(१) ४)

दूसरे मार्ग के होते हुए गड्ढे, उवड-खावड भू-भाग, कटे हुए सूखे पेड या अनाज के डठल और पकिल मार्ग को टाले तथा सक्रम (जल या गड्ढे को पार करने के लिए काष्ठ या पाषाण रचित पुल) के ऊपर से न जाये।

३०

पवडंते व से तत्थ
पक्खलंते व संजए।
हिंसेज्ज पाणभूयाइ
तसे अदुव थावरे।।

तम्हा तेण न गच्छेज्जा
सजए सुसमाहिए।
सइ अन्नेण मग्गेण
जयमेव परक्कमे।।

(दस ५(१) · ५, ६)

वहाँ गिरने या लडखडा जाने से वह सयमी प्राणी-भूतो-त्रस अथवा स्थावर जीवों की हिंसा करता है, इसलिए सुसमाहित सयमी दूसरे मार्ग के होते हुए उस मार्ग से न जाये। यदि दूसरा मार्ग न हो तो यतनापूर्वक जाये।

३१

इगाल छारियं रासिं
तुसरासिं च गोमयं।
ससरक्खेहि पाएहिं
सजओ त न अक्कमे।।

(दस ५ (१) : ७)

सयमी मुनि सचित्त-रज से भरे हुए पैरों से कोयले, राख, भूसे और गोबर के ढेर के ऊपर होकर न जाये।

३२

न चरेज्ज वासे वासते
महियाए व पडतीए।
महावाए व वायते
तिरिच्छसपाइमेसु वा।।

(दस. ५ (१) ८)

वर्षा बरस रही रहो, कोहरा गिर रहा हो, महावात चल रहा हो और मार्ग से तिर्यक् सपातिम जीव जा रहे हो तो भिक्षा के लिए न जाए।

३३

न चरेज्ज वेससामते
बंभचेरव-साणुए।
बभयारिस्स दतस्स
होज्जा तत्थ विसोत्तिया।।
(दस ५ (१) : ६)

ब्रह्मचर्य का वशवर्ती मुनि वेश्या वाडे के समीप न जाए। वहा दमितेन्द्रिय ब्रह्मचारी के भी विस्रोतसिका हो सकती है, साधना का स्रोत मुड सकता है।

३४

साण सूइयं गावि
दित्त गोणं हय गयं।
संडिब्भं कलहं जुद्धं
दूरओ परिवज्जए।।

(दस. ५ (१) - १२)

श्वान, ब्याई हुई गाय, उन्मत्त बेल, अश्व और हाथी, बच्चो के क्रीडा स्थल, कलह और युद्ध (के स्थान) को दूर से टाल कर जाये।

३५

अणुन्नए नावणए
अप्पहिट्ठे अणाउले।
इद्रियाणि जहाभाग
दमइत्ता मुणी चरे।।
(दस ५ (१) · १३)

मुनि न ऊचा मुहकर, न झुककर, न हृष्ट होकर, न आकुल होकर (किन्तु) इन्द्रियो को अपने-अपने विपय के अनुसार दमन कर चले।

३६

दवदवस्स न गच्छेज्जा
भासमाणो य गोयरे।
हसतो नाभिगच्छेज्जा
कुल उच्चावय सया।।

(दस. ५ (१) १४)

श्रमण उच्च-नीच कुल मे भिक्षा के लिए जाए तो दौडता हुओ, बोलता हुआ और हसता हुआ न चले।

रन्नो गिहवईण च
रहस्सारक्खियाण य।
संकिलेसकरं ठाणं
दूरओ परिवज्जए।।
(दस ५ (१) १६)

राजा, गृहपति, अन्तःपुर और आरक्षिको के उस स्थान का मुनि दूर से ही वर्जन करे, जहा जाने से उन्हे सक्लेश उत्पन्न हो।

३८

पडिकुट्ठकुलं न पविसे
मामग परिवज्जए।
अचियत्तकुल न पविसे
चियत्तं पविसे कुल।।

(दस ५ (१) : १७)

मुनि निदित कुल मे प्रवेश न करे। मामक (गृहस्वामी द्वारा प्रवेश निषिद्ध हो) उस का परिवर्जन करे। अप्रीतिकर कुल मे प्रवेश न करे, प्रीतिकर कुल मे प्रवेश करे।

३६

साणीपावारपिहिय
अप्पणा नावपगुरे।
कवाड नो पणोल्लेज्जा
ओग्गहं से अजाइया।।

(दस ५ (१) १८)

श्रमण गृहपति की आज्ञा लिए विना सन और मृग-रोम के बने वस्त्र से ढका द्वार स्वयं न खोले, किवाड स्वय न खोले।

४०

गोयरग्गपविट्ठो उ
वच्चमुत्त न धारए।
ओगास फासुय नच्चा
अणुन्नविय वोसिरे।।

(दस ५ (१) · १९)

भिक्षा के लिए उद्यत श्रमण मल-मूत्र की बाधा को न रखे। भिक्षा (गोचरी) करते समय मल-मूत्र की बाधा हो जाए तो)प्रासुक स्थान देख, उसके स्वामी की आज्ञा लेकर वहा मल–मूत्र का उत्सर्ग करे।

४१

नीयदुवारं तमस
कोट्ठग परिवज्जए।
अचक्खुविसओ जत्थ
पाणा दुप्पडिलेहगा।।
(दस ५ (१) · २०)

जहा चक्षु का विषय न होने के कारण प्राणी न देखे जा सकें, श्रमण-वैसे निम्न-द्वार वाले तमपूर्ण कोष्ठक का परिवर्जन करे।

४२

असंसत्तं पलोएज्जा
नाइदूरावलोयए।
उप्फुल्लं न विणिज्झाए
नियट्टेज्ज अयंपिरो।
(दस ५ (१) . २३)

श्रमण अनासक्त दृष्टि से देखे। बहुत दूर न देखे। उत्फुल्ल दृष्टि से न देखे। भिक्षा का निषेध करने पर बिना कुछ कहे वापस चला जाए।

४३

आहरती सिया तत्थ
परिसाडेज्ज भोयण।
देतिय पडियाइक्खे,
न मे कप्पइ तारिस।।

(दस ५ (१) २८)

श्रमण को भिक्षा देने हेतु भोजन लाती हुई गृहिणी उसे गिराती है तो उसे प्रतिषेध करे कि इस प्रकार का आहार मैं नहीं ले सकता।

४४

पुरेकम्मेण हत्थेण
दव्वीए भायणेण वा।
देंतियं पडियाइक्खे
न मे कप्पइ तारिसं।।
(दस ५ (१) ३२)

पुराकर्मकृत हाथ, कडछी और बर्तन से भिक्षा देती हुई स्त्री को मुनि प्रतिषेध करे—इस प्रकार का आहार मैं नहीं ले सकता।

एव उदओल्ले ससिणिद्धे
    ससरक्खे मट्टिया ऊसे।
हरियाले हिंगुलए
    मणोसिला अजणे लोणे।।

गेरुय वण्णिय सेडिय
    सोरट्ठिय पिट्ठ कुक्कुसकए य।
उक्कट्ठमसंसट्ठे
    ससट्ठे चेव बोधव्वे।।
(दस ५ (१) ३३, ३४)

इसी प्रकार जल से आर्द्र, सस्निग्ध, सचित्त रज-कण, मृत्तिका, क्षार, हरिताल, हिंगुल, मैनशिल, अञ्जन, नमक, गैरिक, वर्णिका, श्वेतिका, सौराष्ट्रिका, तत्काल पीसे हुए आटे या कच्चे चावलो के आटे, अनाज के भूसे या छिलके और फल के सूक्ष्म खण्ड से सने हुए हाथ, कडछी और बर्तन से भिक्षा देती हुई स्त्री को मुनि प्रतिषेध करे—इस प्रकार का आहार मैं नहीं ले सकता तथा संसृष्ट और असंसृष्ट को जानना चाहिए।

४६

असंसट्ठेण हत्थेण
दव्वीए भायणेण वा।
दिज्जमाणं न इच्छेज्जा
पच्छाकम्मं जहिं भवे॥

संसट्ठेण हत्थेण
दव्वीए भायणेण वा।
दिज्जमाणं पडिच्छेज्जा
जं तत्थेसणियं भवे॥

(दस ५ (१) ३५, ३६)

जहां पश्चात्-कर्म का प्रसंग हो वहां असंसृष्ट (भक्त-पान से अलिप्त) हाथ, कड़छी और बर्तन से दिया जाने वाला आहार मुनि न ले।

संसृष्ट (भक्त-पान से लिप्त) हाथ कड़छी और बर्तन से दिया जाने वाला आहार जो वहां एषणीय हो मुनि ले ले।

४७

गुव्विणीए उवन्नत्थं
विविह पाणभोयणं।
भुज्जमाणं विवज्जेज्जा
भुत्तसेसं पडिच्छए।।
(दस. ५ (१) : ३६)

गर्भवती स्त्री के लिए बना हुआ विविध प्रकार का भक्त-पान वह खा रही हो तो मुनि उसका विवर्जन करे, खाने के बाद बचा हो वह ले ले।

४८

ज भवे भत्तपाण तु
कप्पाकप्पम्मि संकिय।
देतिय पडियाइक्खे
न मे कप्पइ तारिस।।
(दस ५ (१) ४४)

जो भक्त-पान कल्प और अकल्प की दृष्टि से शकायुक्त हो, उसे देती हुई स्त्री को मुनि प्रतिषेध करे—इस प्रकार का आहार मैं नहीं ले सकता।

४६

उग्गम से पुच्छेज्जा
कस्सट्ठा केण वा कड।
सोच्चा निस्सकिय सुद्ध
पडिगाहेज्ज संजए।।

(दस. ५ (१) - ५६)

सयमी आहार का उद्‌गम पूछे—किसलिए किया है? किसने किया है?—इस प्रकार पूछे। दाता से प्रश्न का उत्तर सुनकर नि शकित और शुद्ध आहार ले।

५०

तहेव सत्तुचुण्णाइं
कोलचुण्णाइं आवणे।
सक्कुलिं फाणियं पूयं
अन्न वा वि तहाविह।।

विक्कायमाणं पसढं
रएण परिफासिय।
देतियं पडियाइक्खे
न मे कप्पइ तारिस।।
(दस ५ (१) : ७१, ७२)

इसी प्रकार सत्तू, बेर का चूर्ण, तिल–पपडी गीला गुड (राव), पूआ, इस तरह की दूसरी वस्तुए भी जो बेचने के लिए दुकान मे रखी हो, परन्तु न विकी हो, रज से स्पृष्ट (लिप्त) हो गई हों तो मुनि देती हुई स्त्री को प्रतिषेध करे—इस प्रकार की वस्तुएं मैं नहीं ले सकता।

५१

अहो जिणेहि असावज्जा
वित्ती साहूण देसिया।
मोक्खसाहण हेउस्स
साहुदेहस्स धारणा।।

(दस ५ (१) ६२)

कितना आश्चर्य है जिन भगवान् ने साधुओं के मोक्ष-साधना के हेतुभूत संयमी-शरीर की धारणा के लिए निरवद्यवृत्ति का उपदेश दिया है।

५३

दुल्लहा उ मुहादाई
मुहाजीवी वि दुल्लहा।
मुहादाई मुहाजीवी
दो वि गच्छंति सोग्गइ।।

(दस ५ (१) · १००)

मुधादायी दुर्लभ है और मुधाजीवी भी दुर्लभ है। मुधादायी और मुधाजीवी दोनो सुगति को प्राप्त होते है।

५४

पडिग्गह सलिहित्ताण
लेव-मायाए सजए।
दुगध वा सुगध वा
सव्व भुजे न छड्डए।।

(दस ५ (२) १)

सयमी मुनि, लेप लगा रहे तब तक पात्र को पोछकर सब खा ले, शेष न छोडे, भले ही वह दुर्गन्धयुक्त हो या सुगन्धयुक्त।

कालेण निक्खमे भिक्खू
　　कालेण य पडिक्कमे।
अकाल च विवज्जेत्ता
　　काले कालं समायरे।।

(दस ५ (२) ४)

भिक्षु समय पर भिक्षा के लिए निकले और समय पर लौट आये। अकाल को वर्जकर जो कार्य जिस समय का हो उसे उसी समय करे।

५६

अकाले चरसि भिक्खू
कालं न पडिलेहसि।
अप्पाणं च किलामेसि
सन्निवेसं च गरिहसि।।

(दस ५ (२) : ५)

भिक्षो! तुम अकाल मे जाते हो, काल की प्रतिलेखना नहीं करते, इसलिए तुम अपने आपको क्लान्त (खिन्न) करते हो और सन्निवेश (ग्राम) की निन्दा करते हो।

५७

सइ काले चरे भिक्खू
कुज्जा पुरिसकारियं।
अलाभो त्ति न सोएज्जा
तवो त्ति अहियासए।।
(दस ५ (२) : ६)

भिक्षु समय होने पर भिक्षा के लिए जाए, पुरुषकार (श्रम) करे, भिक्षा न मिलने पर शोक न करे, सहज तप ही सही— यो मान भूख को सहन करे।

५८

तहेवुच्चावया पाणा
भत्तट्ठाए समागया।
त-उज्जुयं न गच्छेज्जा
जयमेव परक्कमे।।

(दस. ५ (२) : ७)

इसी प्रकार जहां नाना प्रकार के प्राणी भोजन के निमित्त एकत्रित हो, उनके सम्मुख न जाए। उन्हें त्रास न देता हुआ यतनापूर्वक जाए।

५६

गोयरग्गपविट्ठो उ
न निसीएज्ज कत्थई।
कह च न पबधेज्जा
चिट्ठित्ताण व सजए।।
(दस. ५ (१) ८)

गोचराग्र के लिए गया हुआ सयमी कहीं न बैठे और खडा रहकर भी कथा का प्रबन्ध न करे।

६०

अग्गल फलिह दार
कवाड वा वि सजए।
अवलबिया न चिट्ठेज्जा
गोयरग्गगओ मुणी।।

(दस ५ (२) ६)

गोचराग्र के लिए गया हुआ सयमी आगल, परिघ, द्वार या किवाड का सहारा लेकर खडा न रहे।

६१

समण माहण वा वि
    किविण वा वणीमग।
उवसकमत भत्तट्ठा
    पाणट्ठाए व सजए।।

त अइक्क-मित्तु न पविसे
    न चिट्ठे चक्खु-गोयरे।
एगतमवक्कमित्ता
    तत्थ चिट्ठेज्ज सजए।।

(दस ५ (२) १०, ११)

भक्त या पान के लिए उपसक्रमण करते हुए (घर मे जाते हुए) श्रमण, ब्राह्मण, कृपण या वनीपक को लाघकर सयमी मुनि गृहस्थ के घर मे प्रवेश न करे। गृहस्वामी तथा श्रमण आदि की आखो के सामने खडा भी न रहे। किन्तु एकान्त मे जाकर खडा हो जाए।

६२

वणीमगस्स वा तस्स
दायगस्सुभयस्स वा।
अप्पत्तिय सिया होज्जा
लहुत्तं पवयणस्स वा।।
(दस ५ (२) : १२)

भिक्षाचरो को लाघकर घर मे प्रवेश करने पर वनीपक या गृहस्वामी को अथवा दोनो को अप्रेम हो सकता है। उससे प्रवचन की लघुता होती है।

६३

पडिसेहिए व दिन्ने वा
तओ तम्मि नियत्तिए।
उवसंकमेज्ज भत्तट्ठा
पाणट्ठाए व संजए।।

(दस ५ (२) - १३)

गृहस्वामी द्वारा प्रतिषेध करने या दान देने पर, वहा से उनके वापस चले जाने के पश्चात् सयमी मुनि भक्त-पान के लिए प्रवेश करे।

६४

उप्पल पउम वा वि
कुमुय वा मगदतिय।
अन्न वा पुप्फ सच्चित्त
त च सलुचिया दए।।

त भवे भत्तपाण तु
सजयाण अकप्पिय।
देतिय पडियाइक्खे
न मे कप्पइ तारिस।।
(दस ५ (२) १४, १५)

कोई उत्पल, पद्‌म, कुमुद, मालती या अन्य किसी सचित्त पुष्प का छेदन कर भिक्षा दे वह भक्त-पान सयति के लिए अकल्पनीय होता है, इसलिए मुनि देती हुई स्त्री को प्रतिषेध करे—इस प्रकार का आहार मैं नहीं ले सकता।

६५

उप्पल पउम वा वि
कुमुय वा मगदतिय।
अन्न वा पुप्फ सच्चित्त
त च सम्मद्दिया दए।।

त भवे भत्तपाण तु
सजयाण अकप्पिय।
देतिय पडियाइक्खे
न मे कप्पइ तारिस।।

(दस ५(२) . १६, १७)

कोई उत्पल, पदम्, कुमुद, मालती या अन्य किसी सचित्त पुष्प को कुचल कर भिक्षा दे, वह भक्त-पान सयति के लिए अकल्पनीय होता है, इसलिए मुनि देती हुई स्त्री को प्रतिषेध करे—इस प्रकार का आहार मैं नहीं ले सकता।

६६

सालुय वा विरालिय
कुमुदुप्पलनालिय।
मुणालिय सासवनालिय
उच्छुखड अनिव्वुड।।

तरुणग वा पवाल
रुक्खस्स तणगस्स वा।
अन्नस्स वा वि हरियस्स
आमगं परिवज्जए।।

(दस. ५(२) · १८, १९)

कमलकन्द, पलाशकन्द, कुमुद-नाल, उत्पल-नाल, पद्म-नाल, सरसो की नाल, अपक्व गडेरी, वृक्ष, तृण या दूसरी हरियाली की कच्ची नई कोपल न ले।

६७

तरुणिय व छिवाडि
आमिय भज्जिय सइ।
देतिय पडियाइक्खे
न मे कप्पइ तारिस।।

तहा कोलमणुस्सिन्न
वेलुय कासवनालिय।
तिलपप्पडगं नीमं
आमग परिवज्जए।।

(दस ५(२) : २०, २१)

कच्ची और एक बार भूनी हुई फली देती हुई स्त्री को मुनि प्रतिषेध करे—इस प्रकार का आहार मैं नहीं ले सकता।

इसी प्रकार जो उबाला हुआ न हो वह बेर, वंश-करीर, काश्यप-नालिका तथा अपक्व तिल-पपडी और कदम्ब-फल न ले।

६८

तहेव चाउल पिट्ठ
 वियड वा तत्तनिव्वुड।
तिलपिट्ठ पूइपिन्नाग
 आमग परिवज्जए।।
(दस ५ (२) २२)

इसी प्रकार चावल का पिष्ट, पूरा न उबला हुआ गर्म जल, तिल का पिष्ट, पोई-साग ओर सरसो की खली—अपक्व न ले।

६६

कविट्ठ माउलिगं च
मूलग मूलगत्तिय।
आम असत्थपरिणय
मणसा वि न पत्थए।।

(दस. ५ (२) · २३)

अपक्व और शास्त्र से अपरिणत कैथ, बिजौरा, मूला और मूले के गोल टुकडे को मन कर भी न चाहे।

तहेव फलमंथूणि
बीयमथूणि जाणिया।
बिहेलग पियाल च
आमग परिवज्जए।।

(दस ५ (२) २४)

इसी प्रकार अपक्व फलचूर्ण, बीजचूर्ण, बहेडा और प्रियाल फल न ले।

७२

सयणासण वत्थ वा
भत्तपाण व सजए।
अदेतस्स न कुप्पेज्जा
पच्चक्खे वि य दीसओ।।
(दस ५ (२) २८)

सयमी मुनि सामने दीख रहे शयन, आसन, वस्त्र, भक्त या पान न देने वाले पर भी कोप न करे।

७३

सिया एगइओ लद्धु विविह पाणभोयण।
भद्दग भद्दग भोच्चा विवण्ण विरसमाहरे।।

जाणतु ता इमे समणा आययट्ठी अय मुणी।
सतुट्ठो सेवई पत लूहवित्ती सुतोसओ।।

पूयणट्ठी जसोकामी माणसम्माणकामए।
बहु पसवई पाव मायासल्ल च कुव्वई।।
(दस ५ (२) · ३३, ३५)

कदाचित् कोई एक मुनि विविध प्रकार के पान और भोजन पाकर कहीं एकान्त मे बैठ श्रेष्ठ-श्रेष्ठ खा लेता है, विवर्ण और विरस को स्थान पर लाता है।

ये श्रमण मुझे यों जाने कि यह मुनि बडा मोक्षार्थी है, सन्तुष्ट है, प्रान्त (असार) आहार का सेवन करता है, रूक्षवृत्ति और जिस किसी भी वस्तु से सन्तुष्ट होने वाला है।

वह पूजा का अर्थी, यश का कामी और मान–सम्मान की कामना करने वाला मुनि बहुत पाप का अर्जन करता है और मायाशल्य का आचरण करता है।

७४

लद्धूण वि देवत्त उववन्नो देवकिब्बिसे।
तत्था वि से न याणाइ कि मे किच्चा इम फलं?।।
तत्तो वि से चइत्ताण लब्भिही एलमूयय।
नरय तिरिक्खजोणि वा बोही जत्थ सुदुल्लहा।।
एय च दोस दट्ठूण नायपुत्तेण भासिय।
अणुमाय पि मेहावी मायामोस विवज्जए?।।

(दस. ५ (२) : ४७-४६)

किल्बिषिक देव के रूप मे उपपन्न जीव देवत्व को पाकर भी वहा वह नहीं जानता कि 'यह मेरे किये कार्य का फल है'।

वहा से च्युत होकर वह मनुष्य-गति मे आ एडमूकता (गूगापन) अथवा नरक या तिर्यञ्चयोनि को पाएगा, जहा बोधि अत्यन्त दुर्लभ होती है।

इस दोष को देखकर ज्ञातपुत्र ने कहा—मेधावी मुनि अणु-मात्र भी मायामृषा न करे।

७५

सिक्खिऊण भिक्खेसणसोहिं
संजयाण बुद्धाण सगासे।
तत्थ भिक्खू सुप्पणिहिंदिए
तिव्वलज्ज गुणवं विहरेज्जासि।।
(दस ५ (२) : ५०)

संयत और बुद्ध श्रमणों के समीप भिक्षैषणा की विशुद्धि सीखकर उसमे सुप्रणिहित इन्द्रिय वाला भिक्षु उत्कृष्ट संयम और गुण से सपन्न होकर विचरे।

७६

दस अट्ठ य ठाणाइ
जाइ बालोऽवरज्झई।
तत्थ अन्नयरे ठाणे
निग्गथत्ताओ भस्सई।।
(वयछक्क कायछक्क
अकप्पो गिहिभायण।
पलियक निसेज्जा य
सिणाण सोहवज्जण।।)

(दस ६ ७)

आचार के अठारह स्थान हैं। जो अज्ञ उनमे से किसी एक भी स्थान की विराधना करता है, वह निर्ग्रन्थता से भ्रष्ट होता है।

(अठारह स्थान ये हैं—छह महाव्रत और छह काय तथा अकल्प, गृहस्थ-पात्र, पर्यङ्क, निषद्या, स्नान और शोभा का वर्जन।)

७७

बिडमुब्भेइम लोण
तेल्लं सप्पि च फाणिय।
न ते सन्निहिमिच्छन्ति
नायपुत्तवओरया।।

(दस ६ १७)

जो महावीर के वचन मे रत हैं वे मुनि बिडलवण, सामुद्र-लवण, तैल, घी और द्रव-गुड का सग्रह करने की इच्छा नहीं करते।

जं पि वत्थ व पायं वा
कंबलं पायपुं-छणं।
तं पि संजमलज्जट्ठा
धारंति परिहरंति य।।

न सो परिग्गहो वुत्तो
नायपुत्तेण ताइणा।
मुच्छा परिग्गहो वुत्तो
इइ वुत्त महेसिणा।।

(दस. ६ : १६, २०)

जो भी वस्त्र, पात्र, कम्बल और रजोहरण हैं, उन्हें मुनि सयम और लज्जा की रक्षा के लिए ही रखते हैं और उनका उपयोग करते हैं।

सब जीवो के त्राता ज्ञातपुत्र महावीर ने वस्त्रादि को परिग्रह नहीं कहा है। मूर्च्छा परिग्रह है—ऐसा महर्षि (गणधर) ने कहा है।

७६

अहो निच्चं तवोकम्मं
सव्वबुद्धेहिं वण्णियं।
जा य लज्जासमा वित्ती
एगभत्तं च भोयणं।।

(दस. ६ : २२)

अहो! समी तीर्थंकरो ने श्रमणों के लिए संयम के अनुकूल वृत्ति और देह पालन के लिए एक बार मोजन—इस नित्य तप कर्म का उपदेश दिया है।

८०

सतिमे सुहुमा पाणा
तसा अदुव थावरा।
जाइ राओ अपासतो
कहमेसणिय चरे?।।

(दस ६ २३)

जो त्रस और स्थावर सूक्ष्म प्राणी हैं, उन्हे रात्रि मे नहीं देखता हुआ निर्ग्रन्थ एषणा कैसे कर सकता है।

आउकाय विहिसतो
हिसई उ तयस्सिए।
तसे य विविहे पाणे
चक्खुसे य अचक्खुसे।।
(दस ६ ३०)

अप्काय की हिंसा करता हुआ उसके आश्रित अनेक प्रकार के चाक्षुष, अचाक्षुष त्रस एव स्थावर प्राणियो की हिसा करता है।

८२

तालियटेण पत्तेण
साहाविहुयणेण वा।
न ते वीइउमिच्छन्ति
वीयावेऊण वा परं।।

(दस. ६ . ३७)

वे मुनि वीजन, पत्र, शाखा और पखे से हवा करना तथा दूसरो से हवा कराना नहीं चाहते।

८३

जंपि वत्थं व पायं वा
कबल पायपुंछण।
न ते वायमुईरति
जयं परिहरंति य।।

(दस ६ ३८)

जो भी वस्त्र, पात्र, कम्बल और रजोहरण हैं उनके द्वारा वे मुनि वायु की उदीरणा नहीं करते, किन्तु यतनापूर्वक उनका परिभोग करते हैं।

८४

तम्हा एय वियाणित्ता
दोस दुग्गइवड्ढण।
वाउकायसमारभ
जावज्जीवाए वज्जए।।
(दस ६ ३६)

(वायु-समारम्भ सावद्य-बहुल है) इसलिए इसे दुर्गति-वर्धक दोष जानकर मुनि जीवन-पर्यन्त वायुकाय के समारम्भ का वर्जन करे।

८५

वणस्सइं विहिंसंतो
    हिंसई उ तयस्सिए।
तसे य विविहे पाणे
    चक्खुसे य अचक्खुसे।।

तम्हा एयं वियाणित्ता
    दोसं दुग्गइवड्ढणं।
वणस्सइसमारंभं
    जावज्जीवाए वज्जए।।

(दस. ६ : ४१, ४२)

वनस्पति की हिंसा करता हुआ उसके आश्रित अनेक प्रकार के चाक्षुष (दृश्य), अचाक्षुष (अदृश्य) त्रस और स्थावर प्राणियो की हिंसा करता है। इसीलिए इसे दुर्गतिवर्धक दोष जानकर मुनि जीवन-पर्यन्त वनस्पति के समारभ का वर्जन करे।

८६

जाइं चत्तारिऽभोज्जाइ
इसिणा—हारमाईणि।
ताइ तु विवज्जंतो
सजम अणुपालए।।

पिड सेज्ज च वत्थं च
चउत्थ पायमेव य।
अकप्पिय न इच्छेज्जा
पडिगाहेज्ज कप्पिय।।
(दस ६ ४६, ४७)

ऋषि के लिए जो आहार, शय्या, वस्त्र ओर पात्र अकल्पनीय हैं, उनका वर्जन करता हुआ मुनि सयम का पालन करे। मुनि अकल्पनीय पिण्ड, शय्या-वसति, वस्त्र और पात्र को ग्रहण करने की इच्छा न करे किन्तु कल्पनीय ग्रहण करे।

८७

जे नियाग ममायति
कीयमुद्देसियाहड।
वह ते समणुजाणति
इइ वुत्त महेसिणा।।

तम्हा असणपाणाइ
कीयमुद्देसियाहडं।
वज्जयंति ठियप्पाणो
निग्गथा धम्मजीविणो।।

(दस ६ · ४८, ४६)

जो नित्याग्र, क्रीत, औद्देशिक और आहृत आहार ग्रहण करते हैं वे प्राणि-वध का अनुमोदन करते हैं—ऐसा महर्षि महावीर ने कहा है। इसलिए धर्मजीवी, स्थितात्मा निर्ग्रन्थ क्रीत, औद्देशिक और आहृत अशन, पान आदि का वर्जन करते हैं।

८८

कसेसु कसपाएसु
कुडमोएसु वा पुणो।
भुजतो असणापाणाइ
आयारा परिभस्सइ।।

सीओदग समारभे
मत्तधोयणछड्डणे।
जाइ छन्नति भूयाइ
दिट्ठो तत्थ असजमो।।

पच्छाकम्म पुरेकम्म
सिया तत्थ न कप्पई।
एयमट्ठ न भुजति
निग्गथा गिहिभायणे।।

(दस ६ · ५०, ५१, ५२)

जो गृहस्थ के कासे के प्याले, कासे के पात्र और कुण्डमोद (कासे के बने कुण्डे के आकार वाले बर्तन) मे अशन, पान आदि खाता है वह श्रमण के आचार से भ्रष्ट होता है। बर्तनो को सचित्त जल से धोने मे और बर्तनो के धोए हुए पानी को डालने मे प्राणियो की हिंसा होती है। तीर्थंकरो ने वहा असयम देखा है। गृहस्थ के बर्तन मे भोजन करने मे 'पश्चात्कर्म' और 'पुर कर्म' की सभावना है। वह निर्ग्रन्थ के लिए कल्प्य नहीं है। एतदर्थ वे गृहस्थ के बर्तन मे भोजन नहीं करते।

आसदीपलियकेसु
मचमासालएसु वा।
अणायरियमज्जाण
आसइत्तु सइत्तु वा।।
(दस ६ ५३)

आर्यों के लिए आसन्दी, पलग, मञ्च और आसालक (अवष्टम्भ सहित आसन) पर बैठना या सोना अनाचीर्ण है।

६०

नासदीपलियकेसु
न निसेज्जा न पीढए।
निग्गथाऽपडिलेहाए
बुद्धवुत्तमहिट्ठगा।।

(दस ६ ५४)

तीर्थकरो के द्वारा प्रतिपादित विधियो का आचरण करने वाले निर्ग्रन्थ आसन्दी, पलग, आसन और पीढे का (विशेष स्थिति मे उपयोग करना पडे तो) प्रतिलेखन किये बिना उन पर न बैठे और न सोये।

६१

गोयरग्गपविट्ठस्स
निसेज्जा जस्स कप्पई।
इमेरिसमणायार
आवज्जइ अबोहिय।।
विवत्ती बभचेरस्स
पाणाण अवहे वहो।
वणीमगपडिग्घाओ
पडिकोहो अगारिण।।
अगुत्ती बभचेरस्स
इत्थीओ यावि सकण।
कुसीलवड्ढणं ठाण
दूरओ परिवज्जए।।

(दस ६ ५६, ५७, ५८)

भिक्षा के लिए प्रविष्ट जो मुनि गृहस्थ के घर मे बैठता है, वह इस प्रकार के आगे कहे जाने वाले, अबोधि-कारक अनाचार को प्राप्त होता है। गृहस्थ के घर में बैठने से ब्रह्मचर्य-आचार का विनाश, प्राणियो का अवधकाल मे वध, भिक्षाचरो के अन्तराय, और घर वालो को क्रोध उत्पन्न होता है, ब्रह्मचर्य असुरक्षित होता है और स्त्री के प्रति भी शका उत्पन्न होती है। यह (गृहान्तर निषद्या) कुशीलवर्धक स्थान है इसलिए मुनि इसका दूर से वर्जन करे।

६२

वाहिओ वा अरोगी वा
सिणाण जो उ पत्थए।
वोक्कतो होई आयारो
जढो हवइ संजमो।।

(दस ६ ६०)

जो रोगी या निरोग साधु स्नान करने की अभिलाषा रखता है उसके आचार का उल्लघन होता है, उसका सयम परित्यक्त होता है।

खवेति अप्पाणममोहदसिणो
तवे रया सजम अज्जवे गुणे।
धुणति पावाइ पुरेकडाइं
नवाइ पावाइ न ते करेति।।
(दस ६ ६७)

अमोहदर्श, तप, सयम और ऋजुतारूप गुण मे रत मुनि शरीर को कृश कर देते हैं, वे पुराकृत पाप का नाश करते हैं और नए पाप नहीं करते।

६४

सओवसता अममा अकिचणा
सविज्जविज्जाणुगया जससिणो।
उउप्पसन्ने विमले व चदिमा
सिद्धि विमाणाइ उवेति ताइणो।।
(दस ६ ६८)

सदा उपशान्त, ममता रहित, अकिञ्चन, आत्मविद्यायुक्त, यशस्वी और त्राता मुनि शरद् ऋतु के चन्द्रमा की तरह मल-रहित होकर सिद्धि या सौधर्मावतसक आदि विमानो को प्राप्त करते हैं।

६५

चउण्ह खलु भासाण
परिसखाय पन्नव।
दोण्ह तु विणय सिक्खे
दो न भासेज्ज सव्वसो।।

(दस ७ १)

प्रज्ञावान् मुनि चारो भाषाओ (सत्य, असत्य, मिश्र और व्यवहार) को जानकर दो (सत्य और व्यवहार भाषा) के द्वारा विनय (शुद्ध प्रयोग) सीखे और दो सर्वथा न बोले।

९६

जा य सच्चा अवत्तव्वा
सच्चामोसा य जा मुसा।
जा य बुद्धेहिऽणाइन्ना
न त भासेज्ज पन्नव।।

(दस ७ : २)

जो अवक्तव्य-सत्य, सत्यमृषा (मिश्र), मृषा और असत्याऽमृषा (व्यवहार) भाषा बुद्धो के द्वारा अनाचीर्ण हो उसे प्रज्ञावान् मुनि न बोले।

६७

तहेव होले गोले त्ति
साणे वा वसुले त्ति य।
दमए दुहए वा वि
नेव भासेज्ज पन्नव॥

(दस. ७ १४)

प्रज्ञावान् मुनि रे होल! रे गोल! ओ कुत्ता! ओ वृषल! ओ द्रमक! ओ दुर्भग!—ऐसा न बोले।

६८

अज्जिए पज्जिए वा वि
अम्मो माउस्सिय त्ति य।
पिउस्सिए भाइणेज्ज त्ति
धूए नत्तुणिए त्ति य।।
हले हले त्ति अन्ने त्ति
भट्टे सामिणि गोमिणि।
होले गोले वसुले त्ति
इत्थिय नेवमालवे।।
नामधिज्जेण ण बूया
इत्थीगोत्तेण वा पुणो।
जहारिहमभिगिज्झ
आलवेज्ज लवेज्ज वा।।

(दस ७ · १५, १६, १७)

हे आर्यिके , (हे दादी !, हे नानी !), हे प्रार्यिके ! (हे परदादी !, हे परनानी !), हे अम्ब ! (हे माँ !), हे मोसी !, हे बुआ ! हे भानजी ! हे पुत्री ! हे पोती ! हे हले ! हे हला !,हे अन्ने ! हे भट्टे ! हे स्वामिनी ! हे गोमिनि ! हे होले ! हे गोले ! हे वृषले !—इस प्रकार स्त्रियो को आमन्त्रित न करे। किन्तु (प्रयोजनवश) यथायोग्य गुण-दोष का विचार कर एक बार या बार-बार उन्हे उनके नाम या गोत्र से आमन्त्रित करे।

६६

अज्जए पज्जए वा वि
बप्पो चुल्लपि उ त्ति य।
माउलत भाइणेज्ज त्ति
पुत्ते नत्तुणिय त्ति य।।
हे हो हले त्ति अन्ने त्ति
भट्टा सामिय गोमिए।
होल गोल वसुले त्ति
पुरिसं नेवमालवे।।
नामधेज्जेण णं बूया
पुरिसगोत्तेण वा पुणो।
जहारिहमभिगिज्झ
आलवेज्ज लवेज्ज वा।।

(उत्त ७ : १८, १९, २०)

हे आर्यक ! (हे दादा ! हे नाना !), हे प्रार्यक ! (हे परदादा! हे परनाना !), हे पिता !, हे चाचा !, हे मामा !, हे भानजा !, हे पुत्र !, हे पौत्र !, हे हल !, हे अन्न !, हे भट्ट !, हे स्वामिन् !, हे गोमिन् !, हे होल !, हे गोल !, हे वृषल !— इस प्रकार पुरुष को आमन्त्रित न करे। किन्तु (प्रयोजनवश) यथायोग्य गुण-दोष का विचार कर एक बार या बार-बार उन्हे उनके नाम या गोत्र से आमंत्रित करे।

१००

अतलिक्खे त्ति ण बूया
गुज्झाणुचरिय त्ति य।
रिद्धिमत नर दिस्स
रिद्धिमत ति आलवे।।

(दस ७ ५३)

नभ और मेघ को अन्तरिक्ष अथवा गुह्यानुचरित कहे। ऋद्धिमान् नर को देखकर "यह ऋद्धिमान् पुरुष है"—ऐसा कहे।

१०१

पुढवि भित्तिं सिल लेलु
नेव भिदे न सलिहे।
तिविहेण करणजोएण
सजए सुसमाहिए।।

(दस ८ ४)

सुसमाहित सयमी तीन करण और तीन योग से पृथ्वी, भित्ति (दरार), शिला और ढेले का भेदन न करे ओर न उन्हे कुरेदे।

१०२

सुद्धपुढवीए न निसिए
ससरक्खम्मि य आसणे।
पमज्जित्तु निसीएज्जा
जाइत्ता जस्स ओग्गहं।।

(दस ८ : ५)

मुनि शुद्धपृथ्वी (मुंड भूतल) और सचित्त-रज से ससृष्ट आसन पर न बैठे। अचित्त-पृथ्वी पर प्रमर्जन कर और वह जिसकी हो उसकी अनुमति लेकर बैठे।

१०३

सीओदग न सेवेज्जा
सिलावुट्ठं हिमाणि य।
उसिणोदगं तत्तफासुय
पडिगाहेज्ज सजए।।

(दस ८ . ६)

संयमी शीतोदक (सचित्त जल), ओले, बरसात के जल और हिम का सेवन न करे। तप्त होने पर जो प्रासुक हो गया हो वैसा जल ले।

१०४

उदउल्ल अप्पणो काय
नेव पुछे न सलिहे।
समुप्पेह तहाभूय
नो ण सघट्टए मुणी ।।

(दस ८ ७)

मुनि सचित्त जल से भीगे अपने शरीर को न पोछे और न मले। शरीर को तथाभूत (भीगा हुआ) देखकर उसका स्पर्श न करे।

१०५

इंगाल अगणि अच्चि
अलाय वा सजोइय।
न उजेज्जा न घट्टेज्जा
नो ण निव्वावए मुणी।।

(दस ८ ८)

मुनि अङ्गार, अग्नि, अर्चि और ज्योति–सहित अलात (जलती लकडी) को न प्रदीप्त करे, न स्पर्श करे और न बुझाये।

१०६

तालियटेण पत्तेण
साहाविहुयणेण वा।
न वीएज्ज अप्पणो काय
बाहिर वा वि पोग्गल।।

(दस ८ : ९)

मुनि वीजन, पत्र, शाखा या पखे से अपने शरीर अथवा बाहरी पुद्‌गलो पर हवा न डाले।

१०७

गहणेसु न चिट्ठेज्जा
 वीएसु हरिएसु वा।
उदगम्मि तहा निच्च
 उत्तिगपणगेसु वा।।

(दस ८ ११)

मुनि वन–निकुञ्ज के बीच बीज, हरित, अनन्तकायिक-वनस्पति, सर्पच्छत्र और काई पर खडा न रहे।

१०८

अट्ठ सुहुमाइ पेहाए
जाइ जाणित्तु सजए।
दयाहिगारी भूएसु
आस चिट्ठ सएहि वा।।
सिणेह पुप्फसुहुम च
पाणुत्तिग तहेव य।
पणग बीय हरिय च
अडसुहुम च अट्ठम।।
ऐवमेयाणि जाणित्ता
सव्वभावेण सजए।
अप्पमत्तो जए निच्च
सव्विदियसमाहिए।।

(दस ८ १३, १५, १६)

सयमी मुनि आठ प्रकार के सूक्ष्म (शरीर वाले जीवो) को देखकर बैठे, खडा हो और सोए। इन सूक्ष्म शरीर वाले जीवो को जानने पर ही कोई सब जीवो की दया का अधिकारी होता है।

स्नेह, पुष्प, प्राण उत्तिङ्‌ग, काई, बीज, हरित और अण्ड—ये आठ पकार के सूक्ष्म हैं।

सब इन्द्रियो से समाहित साधु इस प्रकार इन सूक्ष्म जीवों को सब प्रकार से जानकर अप्रमत्त-भाव से सदा यतना करे।

१०६

धुव च पडिलेहेज्जा
जोगसा पायकबल।
सेज्जमुच्चारभूमि च
सथार अदुवासण।।
(दस ८ १७)

मुनि पात्र, कम्बल, शय्या, उच्चार-भूमि, सस्तारक अथवा आसन का यथासमय प्रमाणोपेत प्रतिलेखन करे।

११०

पविसित्तु परागारं
पाणट्ठा भोयणस्स वा।
जय चिट्ठे मियं भासे
ण य रूवेसु मणं करे।।

(दस ८ १६)

मुनि जल या भोजन के लिए गृहस्थ के घर मे प्रवेश कर के उचित स्थान पर खडा रहे, परिमित बोले और रूप मे मन न करे।

१११

बहु सुणेइ कण्णेहि
बहु अच्छीहि पेच्छइ।
न य दिट्ठ सुय सव्व
भिक्खू अक्खाउमरिहइ।।

(दस ८ · २०)

कानो से बहुत सुनता है, आखो से बहुत देखता है, किन्तु सब देखे और सुने को कहना भिक्षु के लिए उचित नहीं।

सुय वा जइ वा दिट्ठ
न लवेज्जोवघाइय।
न य केणइ उवाएण
गिहिजोग समायरे।।

(दस ८ २१)

सुनी हुई या देखी हुई घटना के बारे मे साधु औपघातिक-वचन न कहे और किसी उपाय से गृहस्थोचित कर्म का समाचरण न करे।

११३

निट्ठाण रसनिज्जूढ
भद्दग पावग ति वा।
पुट्ठो वा वि अपुट्ठो वा
लाभालाभ न निद्दिसे।।
(दस ८ २२)

किसी के पूछने पर या बिना पूछे यह सरस है, यह नीरस है, यह अच्छा है, यह बुरा है—ऐसा न कहे और सरस या नीरस आहार मिला या न मिला—ऐसा भी न कहे।

११४

न य भोयणम्मि गिद्धो
चरे उंछं अयंपिरो।
अफासुयं न भुंजेज्जा
कीयमुद्देसियाहडं।।
(दस. ८ : २३)

मुनि भोजन मे गृद्ध होकर विशिष्ट घरो में न जाए, किन्तु वाचालता से रहित होकर उञ्छ (अनेक घरों से थोडा-थोडा) ले। अप्रासुक, क्रीत, औद्देशिक और आहृत आहार प्रमादवश आ जाने पर भी न खाए।

अमोह वयणं कुज्जा
आयरियस्स महप्पणो।
तं परिगिज्झ वायाए
कम्मुणा उववायए।।

(दस. ८ : ३३)

मुनि महान् आत्मा आचार्य के वचन को सफल करे। आचार्य जो कहे उसे वाणी से ग्रहण कर कर्म से उसका आचरण करे।

११६

जोग च समणधम्मम्मि
जुजे अणलसो ध्रुव।
जुत्तो य समणधम्मम्मि
अट्ठ लहइ अणुत्तर।।

(दस ८ ४२)

मुनि आलस्य रहित हो श्रमणधर्म मे योग (मन, वचन और काया) का यथोचित प्रयोग करे। श्रमण-धर्म मे लगा हुआ मुनि अनुत्तर फल को प्राप्त होता है।

११७

हत्थं पाय च काय च
पंणिहाय जिइदिए।
अल्लीणगुत्तो निसिए
सगासे गुरुणो मुणी।।

(दस ८ ४४)

जितेन्द्रिय मुनि हाथ, पैर और शरीर को संयमित कर, आलीन (न अति दूर, न अति निकट) और गुप्त (मन और वाणी से सयत) होकर गुरु के समीप बैठे।

११८

न पक्खओ न पुरओ
नेव किच्चाण पिट्ठओ।
न य ऊरु समासेज्जा
चिट्ठेज्जा गुरुणंतिए।।

(दस ८ ४५)

मुनि आचार्य आदि के बराबर न बैठे, आगे और पीछे भी न बैठे। गुरु के समीप उनके ऊरु से अपना ऊरु सटाकर न बैठे।

११६

अयारपन्नत्तिधर
दिट्ठिवायमहिज्जग।
वइविक्खलिय नच्चा
न त उवहसे मुणी।।
(दस ८ ४६)

आचारांग और प्रज्ञप्ति–भगवती को धारण करने वाला तथा दृष्टिवाद को पढने वाला मुनि बोलने मे स्खलित हुआ है (उसने वचन, लिङ्ग और वर्ण का विपर्यास किया है) यह जान कर मुनि उसका उपहास न करे।

१२०

नक्खत्त सुमिण जोग
निमित्त मत भेसज।
गिहिणो त न आइक्खे
भूयाहिगरण पय।।

(दस ८ ५०)

नक्षत्र, स्वप्नफल, वशीकरण, निमित्त, मन्त्र और भेषज--ये जीवो की हिंसा के स्थान हैं, इसलिए मुनि गृहस्थो को इनके फलाफ्ल न बताए।

१२१

अन्नट्ठ पगडं लयणं
भएज्ज सयणासणं।
उच्चारभूमिसपन्न
इत्थीपसुविवज्जिय।।

(दस ८ ५१)

मुनि दूसरो के लिए बने हुए गृह, शयन और आसन का सेवन करे। वह गृह मल-मूत्र विसर्जन की भूमि से युक्त तथा स्त्री और पशु से रहित हो।

१२२

विवित्ता य भवे सेज्जा
नारीण न लवे कहं।
गिहिसथव न कुज्जा
कुज्जा साहूहि संथव।।

(दस ८ ५२)

जो एकान्त स्थान हो वहा मुनि केवल स्त्रियो के बीच व्याख्यान न दे। मुनि गृहस्थो से परिचय न करे। परिचय साधुओ से करे।

१२३

जाए सद्धाए निक्खतो
परियायट्ठाणमुत्तम।
तमेव अणुपालेज्जा
गुणे आयरियसम्मए।।

(दस ८ ६०)

मुनि जिस श्रद्धा से उत्तम प्रवज्या-स्थान के लिए घर से निकला है, उस श्रद्धा को पूर्ववत् बनाए रखे और आचार्य सम्मत गुणो का अनुपालन करे।

१२४

ये यावि मदि त्ति गुरु विइत्ता
डहरे इमे अप्पसुए त्ति नच्चा।
हीलंति मिच्छ पडिवज्जमाणा
करेंति आसायण ते गुरूण।।
(दस ६(१) २)

जो मुनि गुरु को—'ये मंद (अल्प-प्रज्ञ) हैं, 'ये अल्पवयस्क और अल्प-श्रुत हैं' ऐसा जानकर उनके उपदेश को मिथ्या मानते हुए उनकी अवहेलना करते हैं, वे गुरु की आशातना करते हैं।

पगईए मंदा वि भवति एगे
डहरा वि य जे सुयबुद्धोववेया।
आयारमता गुणसुट्ठिअप्पा
जे हीलिया सिहिरिव भास कुज्जा।।
(दस ६ (१) ३)

कई आचार्य वयोवृद्ध होते हुए भी स्वभाव से ही मन्द (अल्प-प्रज्ञ) होते हैं और कई अल्पवयस्क होते हुए भी श्रुत और बुद्धि से सम्पन्न होते हैं। आचारवान् और गुणों मे सुस्थितात्मा आचार्य, भले ही फिर वे मन्द हो या प्राज्ञ, अवज्ञा प्राप्त होने पर गुण-राशि को उसी प्रकार भस्म कर डालते हैं जिस प्रकार अग्नि-ईंधन-राशि को।

१२६

जे यावि नाग डहर ति नच्चा
आसायए से अहियाय होइ।
एवायरिय पि हु हीलयतो
नियच्छई जाइपहं खु मदे।।
(दस ६ (१) ४)

जो कोई–यह सर्प छोटा है–ऐसा जानकर उसकी आशातना (कदर्थना) करता है, वह (सर्प) उसके अहित के लिए होता है। इसी प्रकार अल्पवयस्क आचार्य की भी अवहेलना करने वाला मद ससार मे परिभ्रमण करता है।

१२७

आयरियपाया पुण अप्पसन्ना
अबोहिआसायण नत्थि मोक्खो।
तम्हा अणाबाहसुहाभिकंखी
गुरुप्पसायाभिमुहो रमेज्जा।।
(दस ६ (१) १०)

आचार्यपाद के अप्रसन्न होने पर बोधि-लाभ नहीं होता। आशातना से मोक्ष नहीं मिलता। इसलिए मोक्ष-सुख चाहने वाला मुनि गुरु-कृपा के अभिमुख रहे।

१२८

जहाहियग्गी जलण नमसे
नाणाहुईमतपयाभिसित्तं।
एवायरिय उवचिट्ठएज्जा
अणतनाणोवगओ वि सतो।।
(दस ६ (१) ११)

जैसे आहिताग्नि ब्राह्मण विविध आहुति और मन्त्रपदो से अभिषिक्त अग्नि को नमस्कार करता है, वैसे ही शिष्य अनन्तज्ञान-सम्पन्न होते हुए भी आचार्य की विनयपूर्वक सेवा करे।

१२६

जहा ससी कोमुइजोगजुत्तो
नक्खत्ततारागणपरिवुडप्पा।
खे सोहई विमले अब्भमुक्के
एव गणी सोहइ भिक्खुमज्झे।।

(दस ६ (१) १५)

जिस प्रकार बादलो से मुक्त विमल आकश मे नक्षत्र और तारागण से परिवृत, कार्तिक-पूर्णिमा मे उदित चन्द्रमा शोभित होता है, उसी प्रकार भिक्षुओ के बीच गणी (आचार्य) शोभित होते हैं।

१३०

सोच्चाण मेहावी सुभासियाइ
सुस्सूसए आयरियप्पमत्तो।
आराहइत्ताण गुणे अणेगे
से पावई सिद्धिमणुत्तर।।
(दस. ६ (१) १७)

मेधावी मुनि इन सुभाषितो को सुनकर अप्रमत्त रहता हुआ आचार्य की शुश्रूषा करे। इस प्रकार वह अनेक गुणो की आराधना कर अनुत्तर सिद्धि को प्राप्त करता है।

१३१

तहेव अविणीयप्पा उववुज्झा हया गया।
दीसंति दुहमेहता आभिओगमुवट्ठिया।।
तहेव अविणीयप्पा लोगंसि नरनारिओ।
दीसंति दुहमेहता छाया विगलितेंदिया।।
दंडसत्थपरिजुण्णा असब्भवयणेहि य।
कलुणा विवन्नछंदा खुप्पिवासाए परिगया।।
(दस ९ (२) ५, ७, ८)

जो औपवाह्य घोडे और हाथी अविनीत होते हैं, वे सेवाकाल में दु:ख का अनुभव करते हुए देखे जाते हैं।

लोक में जो पुरुष और स्त्री अविनीत होते हैं, वे क्षत-विक्षत या दुर्बल, इन्द्रिय-विकल, दण्ड और शस्त्र से जर्जर, असभ्य वचनों के द्वारा तिरस्कृत, करुण, परवश, भूख और प्यास से पीडित होकर दु:ख का अनुभव करते हुए देखे जाते हैं।

१३२

तहेव सुविणीयेप्पा
उववज्झा हया गया।
दीसति सुहमेहता
इड्ढि पत्ता महायसा।।

तहेव सुविणीयप्पा
लोगसि नरनारिओ।
दीसति सुहमेहता
इड्ढि पत्ता महासया।।

(दस ६ (२) ६, (६)

जो औपवाह्य घोडे और हाथी सुविनीत होते हैं, वे ऋद्धि और महान् यश को पाकर सुख का अनुभव करते हुए देखे जाते है।

लोक मे जो पुरुष या स्त्री सुविनीत होते हैं, वे ऋद्धि और महान् यश को पाकर सुख का अनुभव करते हुए देखे जाते हैं।

तहेव अविणीयप्पा
देवा जक्खा य गुज्झगा।
दीसंति दुहमेहंता
आभिओगमुवट्ठिया।।
(दस ६ (२) १०)

जो देव, यक्ष और गुह्यक (भवनवासी देव) अविनीत होते हैं, वे सेवाकाल मे दु ख का अनुभव करते हुए देखे जाते हैं।

जे आयरियउवज्झायाणं
सुस्सूसावयणकरा।
तेसि सिक्खा पवड्ढति
जलसित्ता इव पायवा।।
(दस ६ (२) · १२)

जो मुनि आचार्य और उपाध्याय की शुश्रूषा और आज्ञा-पालन करते हैं उनकी शिक्षा उसी प्रकार बढती है जैसे जल से सींचे हुए वृक्ष।

१३५

अप्पणट्ठा परट्ठा वा
सिप्पा णेउणियाणि य।
गिहिणो उवभोगट्ठा
इहलोगस्स कारणा।।

जेण बधं वहं घोर
परियावं च दारुणं।
सिक्खमाणा नियच्छंति
जुत्ता ते ललिइंदिया।।

(दस ६ (२) . १३, १४)

जो गृही अपने या दूसरों के लिए, लौकिक उपभोग के निमित्त शिल्प और नैपुण्य सीखते हैं—

वे पुरुष ललितेन्द्रिय होते हुए भी शिक्षा-काल में (शिक्षक के द्वारा) घोर बन्ध, वध और दारुण परिताप को प्राप्त होते हैं।

१३६

ते वि त गुरुं पूयति
तस्स सिप्पस्स कारणा।
सक्कारेति नमसति
तुट्ठा निद्देसवत्तिणो।।
किं पुण जे सुयग्गाही
अणतहियकामए।
आयरिया जं वए भिक्खू
तम्हा तं नाइवत्तए।।

(दस ६ (२) १५, १६)

जो आगम-ज्ञान को पाने मे तत्पर और अनन्तहित (मोक्ष) का इच्छुक है उसका फिर कहना ही क्या ? इसलिए आचार्य जो कहे भिक्षु उसका उल्लघन न करे

फिर भी वे उस शिल्प के लिए उस गुरु की पूजा करते हैं, सत्कार करते है, नमस्कार करते हैं और सतुष्ट होकर उसकी आज्ञा का पालन करते हैं।

१३७

नीय सेज्ज गइ ठाण
नीय च आसणाणि य।
नीयं च पाए वदेज्जा
नीयं कुज्जा य अजलि।।

(दस ६ (२) · १७)

भिक्षु (आचार्य से) नीची शय्या करे, नीची गति करे, नीचे खडा रहे, नीचा होकर आचार्य के चरणो मे वदना करे और नीचा होकर अञ्जली करे, हाथ जोडे।

१३८

सघट्टइत्ता काएण
तहा उवहिणामवि।
खमेह अवराह मे
वएज्ज न पुणो त्ति य।।
(दस ६ (२) १८)

अपनी काया से तथा उपकरणो से एवं किसी दूसरे प्रकार से आचार्य का स्पर्श हो जाने पर शिष्य इस प्रकार कहे—'आप मेरा अपराध क्षमा करे', मैं फिर ऐसा नहीं करूगा।'

काल छदोवयार च
पडिलेहित्ताण हेउहि।
तेण तेण उवाएण
त त सपडिवायए।।
(दस ६ (२) २०)

काल, अभिप्राय और आराधन-विधि को हेतुओ से जानकर, उस-उस (तदनुकूल) उपाय के द्वारा उस-उस प्रयोजन का सम्प्रतिपादन करे—पूरा करे।

निद्देसवत्ती पुण जे गुरूण
सुयत्थधम्मा विणयम्मि कोविया।
तरित्तु ते ओहमिण दुरुत्तर
खवित्तु कम्म गइमुत्तम गइ।।
(दस ६ (२) २३)

जो गुरु के आज्ञाकारी हैं, जो गीतार्थ है, जो विनय मे कोविद हैं, वे इस दुस्तर ससार-समुद्र को तर कर, कर्मो का क्षय कर उत्तम गति को प्राप्त होते हैं।

१४१

आयरिय अग्गिमिवाहियग्गी
सुस्सूसमाणो पडिजागरेज्जा।
आलोइय इंगियमेव नच्चा
जो छन्दमाराहयइ स पुज्जो।।

(दस ६ (३) १)

जैसे आहिताग्नि अग्नि की शुश्रूषा करता हुआ जागरूक रहता है, वैसे ही जो आचार्य की शुश्रूषा करता हुआ जागरूक रहता है, आचार्य के आलोकित और इङ्‌गित को जानकर उनके अभिप्राय की आराधना करता है, वह पूज्य है।

१४२

आयारमट्ठा विणय पउजे
सुस्सूसमाणो परिगिज्झ वक्क।
जहोवइट्ठ अभिकखमाणो
गुरु तु नासाययई स पुज्जो।।
(दस ६ (३) २)

जो आचार्य के लिए विनय का प्रयोग करता है, जो आचार्य को सुनने की इच्छा रखता हुआ उनके वाक्य को ग्रहण कर उपदेश के अनुकूल आचरण करता है, जो गुरु की आशातना नही करता, वह पूज्य है।

राइणिएसु विणय पउजे
डहरा वि य जे परियायजेट्ठा।
नियत्तणे वट्टइ सच्चवाई
ओवावय वक्ककरे स पुज्जो।।
(दस ६ (३) ३)

जो अल्पवयस्क होने पर भी दीक्षा-काल मे ज्येष्ठ है--उन पूजनीय साधुओ के प्रति विनय का प्रयोग करता है, नम्र व्यवहार करता है सत्यवादी है, गुरु के समीप रहने वाला हे और जो गुरु की आज्ञा का पालन करता हे, वह पूज्य है।

१४४

सथारसेज्जासणभत्तपाणे
अप्पिच्छया अइलाभे वि सते।
जो एवमप्पाणभितोसएज्जा
सतोसपाहन्नरए स पुज्जो।।
(दस ६ (३) ५)

सस्तारक, शय्या, आसन, भक्त और पानी का अधिक लाभ होने पर भी जो अल्पेच्छ होता है, अपने आपको सन्तुष्ट रखता है और जो सन्तोष-प्रधान जीवन मे रत है, वह पूज्य है।

१४५

जे माणिया सययं माणयंति
जत्तेण कन्न व निवेसयंति।
ते माणए माणरिहे तवस्सी
जिइंदिए सच्चरए स पुज्जो।।
(दस ९ (३) १३)

अभ्युत्थान आदि के द्वारा सम्मानित किए जाने पर जो शिष्यो को सतत सम्मानित करते हैं--श्रुत-ग्रहण के लिए प्रेरित करते हैं, पिता जैसे अपनी कन्या को यत्नपूर्वक योग्य कुल मे स्थापित करता है वैसे ही जो आचार्य अपने शिष्यो को योग्य मार्ग मे स्थापित करते है, उन माननीय तपस्वी, जितेन्द्रिय और सत्यरत आचार्य का जो सम्मान करता है वह पूज्य है।

१४६

गुरुमिह सयय पडियरिय मुणी
जिणमयनिउणे अभिगमकुसले।
धुणिय रयमल पुरेकड
भासुरमउलं गइ गय॥

(दस ६ (३) १५)

इस लोक मे गुरु की सतत सेवा कर, जिनमत-निपुण (आगम-निपुण) और अभिगम (विनय-प्रतिपत्ति) में कुशल मुनि पहले किए हुए रज और मल को कम्पित कर प्रकाशयुक्त अनुपम गति को प्राप्त होता है।

१४७

निक्खम्ममाणाए बुद्धवयणे
निच्च चित्तसमाहिओ हवेज्जा।
इत्थीण वस न यावि गच्छे
वत नो पडियायई जे स भिक्खू।।
(दस १० - ५)

जो तीर्थङ्कर के उपदेश से निष्क्रमण कर (प्रव्रज्या ले) निर्ग्रंथ-प्रवचन मे सदा समाहित-चित्त होता है जो स्त्रियो के अधीन नहीं होता जो वमे हुए को वापिस नहीं पीता (व्यक्त भोगो का पुन सेवन नहीं करता)—वह भिक्षु है।

१४८

पुढवि न खणे न खणावए
सीओदग न पिए न पियावए।
अगणिसत्थ जहा सुनिसिय
त न जले न जलावए जे स भिक्खू।।
(दस १० २)

जो पृथ्वी का खनन न करता है ओर न कराता है, जो शीतोदक न पीता है और न पिलाता है, शस्त्र के समान सुतीक्ष्ण अग्नि को न जलाता है और न जलवाता है—वह भिक्षु है।

१४६

अनिलेण न वीए न वीयावए
हरियाणि न छिंदे न छिंदवाए।
बीयाणि सया विवज्जयतो
सच्चित नाहारए जे स भिक्खू।।
(दस १० ३)

जो पखे आदि से हवा न करता है ओर न करवाता है, जो हरित का छेदन न करता है ओर न करवाता है जो वीजो का सदा विवर्जन करता है (उनके सस्पर्श से दूर रहता हे) जो सचित्त का आहार नहीं करता—वह भिक्षु है।

१५०

रोइय नायपुत्तवयणे
अत्तसमे मन्नेज्ज छप्पि काए।
पच य फासे महव्वयाइ
पचासवसवरे जे स भिक्खू।।
(दस १० ५)

जो ज्ञातपुत्र के वचन मे श्रद्धा रखकर छहो कायों (सभी जीवो) को आत्मसम मानता है, जो पाँच महाव्रतो का पालन करता है, जो पाँच आस्रवो का सवरण करता है—वह भिक्षु है।

१५१

चत्तारि वमे सया कसाए
धुवयोगी य हवेज्ज बुद्धवयणे।
अहणसे निज्जायरूवरयए
गिहिजोग परिवज्जए जे से भिक्खू।।
सम्मद्दिट्ठी सया अमूढे
अत्थि हु नाणे तवे संजमे य।
तवसा धुणइ पुराणपावगं
मणवयकायसुसवुडे जे स भिक्खू।।
(दस १० . ६, ७)

जो चार कषाय (क्रोध, मान, माया और लोभ) का परित्याग करता है, जो निर्ग्रन्थ प्रवचन मे ध्रुवयोगी है जो अधन है, जो स्वर्ण तथा चाँदी से रहित है, जो गृहीयोग (क्रय-विक्रय आदि) का वर्जन करता है—वह भिक्षु है।

जो सम्यक्‌दर्शी है, जो सदा अमूढ है, जो ज्ञान-तप और सयम के अस्तित्व मे आस्थावान् है, जो तप के द्वारा पुराने पापो को प्रकम्पित कर देता है, जो मन, वचन तथा काय से सुसवृत है—वह भिक्षु है।

१५२

तहेव असण पाणग वा
विविह खाइमसाइय लभिता ।
होही अट्ठो सुए परे वा
त न निहे ना निहावए जे स भिक्खू।।

(दस १० ८)

पूर्वोक्त विधि से विविध अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य को प्राप्त कर—यह कल या परसो काम आएगा—इस विचार से जो न सन्निधि (सचय) करता है और न कराता है—वह भिक्षु है।

१५३

तहेव असण पाणग वा
 विविह खाइमसाइम लभित्ता।
छदिय साहम्मियाण भुजे
 भोच्चा सज्झायरए य जे स भिक्खू।।
(दस १० ६)

पूर्वोक्त प्रकार से विविध अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य को प्राप्त कर जो साधर्मिको को निमन्त्रित कर भोजन करता है, जो भोजन कर चुकने पर स्वाध्याय मे रत रहता है—वह भिक्षु है।

न य वुग्गहिय कह कहेज्जा
न य कुप्पे निहुइदिए पसते।
सजमधुवजोगजुत्ते
उवसते अविहेडए जे स भिक्खू।।
जो सहइ हु गामकटए
अक्कोसपहारतज्जणाओ य।
भयभेरवसद्दसपहासे
समसुहदुक्खसहे य जे स भिक्खू।।
(दस १० १०, ११)

जो कलहकारी कथा नहीं करता, जो कोप नहीं करता, जिसकी इन्द्रियाँ अनुद्धत हैं, जो प्रशान्त है, जो सयम मे ध्रुवयोगी है, जो उपशात है, जो दूसरो को तिरस्कृत नहीं करता—वह भिक्षु है।

जो कार्टे के समान चुभने वाले इन्द्रिय-विषयो, आक्रोश-वचनो, प्रहारो, तर्जनाओ और बेताल आदि के अत्यन्त भयानक शब्दयुक्त अट्टहासो को सहन करता है तथा सुख और दुःख को समभावपूर्वक सहन करता है—वह भिक्षु है।

पडिम पडिवज्जिया मसाणे
    नो भायए भयभेरवाइ दिस्स।
विविहगुणतवोरए य निच्च
    न सरीर चाभिकखई जे स भिक्खू।।

असइ वोसट्ठचत्तदेहे
    अक्कुट्ठे व हए व लूसिए वा।
पुढवि समे मणी हवेज्जा
    अनियाणे अकोउहल्ले य जे स भिक्खू।।
(दस १० १२, १३)

जो श्मशान मे प्रतिमा को ग्रहण कर, अत्यन्त भयानक दृश्यो को देखकर नहीं डरता, जो विविध गुणो और तपो मे रत होता है, जो शरीर की आकाक्षा नहीं करता—वह भिक्षु है।

जो मुनि वार-बार देह का व्युत्सर्ग और त्याग करता है जो आक्रोश—गाली देने, पीटने और काटने पर पृथ्वी के समान सर्वसह होता है, जो निदान नहीं करता जो कुतूहल नहीं करता—वह भिक्षु है।

उवहिम्मि अमुच्छिए अगिद्धे
अन्नायउछपुल निप्पुलाए।
कयविक्कयसन्निहिओ विरए
सव्वसगावगए य जे स भिक्खू।।

अलोल भिक्खू न रसेसु गिद्धे
उछ चरे जीविय नामिकखे।
इड्ढि च सक्कारण पूयण च
चए ठियप्पा अणिहे जे स भिक्खू।।
(दस १० १६, १७)

जो मुनि वस्त्रादि उपाधि मे मूर्च्छित नहीं है, जो अगृद्ध है, जो अज्ञात कुलो से भिक्षा की एषणा करने वाला है, जो सयम को असार करने वाले दोषो से रहित है, जो क्रय-विक्रय और सन्निधि से विरत है,, जो सब प्रकार के सगो से रहित है (निर्लेप है)—वह भिक्षु है।

जो अलोलुप है, रसो में गृद्ध नहीं है, जो उञ्छचारी है (अज्ञात कुलो से थोडी-थोडी भिक्षा लेता है), जो असयम जीवन की आकाक्षा नहीं करता, जो ऋद्धि, सत्कार और पूजा की स्पृहा को त्यागता है, जो स्थितात्मा है, जो अपनी शक्ति का गोपन नहीं करता—वह भिक्षु है।

१५८

न पर वएज्जासि अय कुसीले
जेणऽन्नो कुप्पेज्ज न त वएज्जा।
जाणिय पत्तेय पुण्णपाव
अत्ताण न समुक्कसे जे स भिक्खूए।।

न जाइमत्ते न य रूवमत्ते
न लाभमत्ते न सुएणमत्ते।
मयाणि सव्वाणि विवज्जइत्ता
धम्मज्झाणरए जे स भिक्खू।।

(दस १० . १८, १९)

प्रत्येक व्यक्ति के पुण्य-पाप पृथक्-पृथक् होते हैं, ऐसा जानकर जो दूसरे को 'यह कुशील (दुराचारी) है' ऐसा नहीं कहता, जिससे दूसरा कुपित हो ऐसी बात नहीं कहता, जो अपनी विशेषता पर उत्कर्ष नहीं लाता—वह भिक्षु है।

जो जाति का मद नहीं करता, जो रूप का मद नहीं करता, जो लाभ का मद नहीं करता, जो सब मदो को वर्जत ाहुआ धर्म-ध्यान मे रत रहता है—वह भिक्षु है।

१५६

पवेयए अज्जपय महामुणी
धम्मे ठिओ ठावयई पर पि।
निक्खम्म वज्जेज्ज कुसीललिग
न यावि हस्सकुहए जे स भिक्खू।।

त देहवास असुइ असासय
सया चए निच्च हियट्ठियप्पा।
छिदित्तु जाईमरणस्स बधण
अवेइ भिक्खू अपुणरागम गइ।।

(दस १० २०, २१)

जो महामुनि आर्यपद (धर्मपद) का उपदेश करता है, जो स्वय धर्म में स्थित होकर दूसरे को भी धर्म मे स्थित करता है, जो प्रव्रजित हो कुशील-लिङ्ग का वर्जन करता है, जो दूसरो को हसाने के लिए कुतूहलपूर्ण चेष्टा नहीं करता–वह भिक्षु है।

अपनी आत्मा को सदा शाश्वत-हित मे सुस्थित रखने वाला भिक्षु इस अशुचि और अशाश्वत देहवास को सदा के लिए त्याग देता है और वह जन्म-मरण के बन्धन को छेदकर अपुनरागम-गति (मोक्ष) को प्राप्त होता है।

१६०

जया य वंदिमो होइ
पच्छा होइ अवंदिमो।
देवया व चुया ठाणा
स पच्छा परितप्पइ।।

(दस चू (१) ३)

प्रव्रजितकाल में साधु वंदनीय होता है। वही जब उत्प्रव्रजित होकर अवन्दनीय हो जाता है तब वह वैसे ही परिताप करता है जैसे अपने स्थान से च्युत देवता।

जया य पूइमो होइ
पच्छा होइ अपूइमो।
राया व रज्जपब्भट्ठो
स पच्छा परितप्पइ।

(दस चू (१) ४)

प्रव्रजितकाल मे साधु पूज्य होता है। वही जब उत्प्रव्रजित होकर अपूज्य हो जाता है तब वह वैसे ही परिताप करता है जैसे राज्य-भ्रष्ट राजा।

१६२

जया या माणिमो होइ
पच्छा होइ अमाणिमो।
सेट्ठि व्व कब्बडे छूढो
स पच्छा परितप्पइ।।

(दस चू (१) ५)

प्रव्रजितकाल मे साधु मान्य होता है। वही जब उत्प्रव्रजित होकर अमान्य हो जाता है तब वह वैसे ही परिताप करता है जैसे कर्बट (छोटे से गाव) में अवरुद्ध किया हुआ श्रेष्ठी।

१६३

जया य थेरओ होइ
समइक्कतजोव्वणो।
मच्छो व्व गलं गिलित्ता
स पच्छा परितप्पइ।।

(दसु. चू (१) . ६)

यौवन के बीत जाने पर वह उत्प्रव्रजित साधु बूढ़ा होता है, तब वह वैसे ही परिताप करता है जैसे काटे को निगलने वाला मत्स्य।

१६४

जया य कुकुडबस्स
कुतत्तीहि विहम्मइ।
हत्थी व बधणे बद्धो
स पच्छा परितप्पइ।।

(दस चू (१) ७)

वह उत्प्रव्रजित साधु जब कुटुम्ब की दुश्चिन्ताओ से प्रतिहत होता है तब वह वैसे ही परिताप करता है जैसे बन्धन से बधा हुआ हाथी।

१६५

पुत्तदारपरिकिण्णो
मोहसताणसतओ।
पकोसन्नो जहा नागो
स पच्छा परितप्पइ।।

(दस चू (१) ८)

वह उत्प्रव्रजित साधु पुत्र और स्त्री से घिरा हुआ ओर मोह की परम्परा से परिव्याप्त होकर वेसे ही परिताप करता हे जेसे पक मे फसा हुआ हाथी।

१६६

अज्ज आह गणी हुतो
भावियप्पा बहुस्सुओ।
जइ ह रमतो परियाए
सामण्णे जिणदेसिए।।

(दस चू (१) · ६)

आज मे भावितात्मा ओर बहुश्रुत गणी होता यदि जिनोपदिष्ट श्रमण-पर्याय (चारित्र) मे रमण करता।

१६७

देवलोगसमाणो उ
परियाओ महेसिण।
रयाण अरयाणं तु
महानिरयसारिसो।।

(दस चू (१) : १०)

संयम में रत महर्षियों के लिए मुनि-पर्याय देवलोक के समान सुखद होता है और जो सयम में रत नहीं होते उनके लिए वही (मुनि-पर्याय) महानरक के समान दु खद होता है।

अमरोवम जाणिय सोक्खमुत्तम
रयाण परियाए तहारयाण।
निरओवम जाणिय दुक्खमुत्तम
रमेज्ज तम्हा परियाय पडिए।।
(दस चू (१) ११)

सयम मे रत्त मुनियो का सुख देवो के समान उत्तम (उत्कृष्ट) जानकर तथा सयम मे रत न रहने वाले मुनियो का दु ख नरक के समान उत्तम (उत्कृष्ट) जानकर पण्डित मुनि सयम मे ही रमण करे।

धम्माउ भट्ठ सिरिओ ववेय
जन्नग्गि विज्झायमिव प्पतेय।
हीलति ण दुव्विहिय कुसीला
दाढुद्धिय घोरविस व नाग।।
(दस चू (१) १२)

जिसकी दाढे उखाड ली गई हो उस घोर विषधर सर्प की साधारण लोग भी अवहेलना करते हैं वैसे ही धर्म-भ्रष्ट, चारित्ररूपी श्री से रहित, बुझी हुई यज्ञाग्नि की भांति निस्तेज और दुर्विहित साधु की कुशील व्यक्ति भी निन्दा करते हैं।

भुजित्तु भोगाइ पसज्झ चेयसा
तहाविह कट्टु असजम बहु।
गइ च गच्छे अणभिज्झिय दुह
बोही य से नो सुलभा पुणो पुणो।।
(दस चू (१) १४)

वह सयम से भ्रष्ट साधु आवेगपूर्ण चित्त से भोगो को भोगकर और तथाविध प्रचुर असयम का आसेवन कर अनिष्ट एव दु खपूर्ण गति मे जाता है और बार-बार जन्म-मरण करने पर भी उसे बोधि सुलभ नहीं होती।

१७१

न मे चिरं दुक्खमिणं भविस्सई
असासया भोगपिवास जतुणो ।
न चे सरीरेण इमेणवेस्सई
अविस्सई जीवियपज्जवेण मे।।
(दस चू (१) १६)

यह मेरा दुख चिरकाल तक नहीं रहेगा। जीवो की भोग-पिपासा अशाश्वत है। यदि वह इस शरीर के होते हुए न मिटी तो मेरे जीवन की समाप्ति के समय तो वह अवश्य मिट ही जाएगी।

तम्हा आयारपरक्कमेण
सवरसमाहिबहुलेण।
चरिया गुणा य नियमा य
होंति साहूण दट्ठव्वा।।
(दस चू (२) ४)

आचार मे पराक्रम करने वाले, सवर मे प्रभूत समाधि रखने वाले साधुओ को चर्या, गुणो तथा नियमो की ओर दृष्टिपात करना चाहिए।

१७३

अणिएयवासो समुयाणचरिया
अन्नायउछ पइरिक्कया य।
अप्पोवही कलहविज्जणा य
विहारचरिया इसिण पसत्था।।
(दस चू (२) ५)

अनिकेतवास (गृहवास का त्याग), समुदान-चर्या (अनेक कुलो से भिक्षा लेना), अज्ञात कुलो से भिक्षा लेना, एकान्तवास, उपकरणो की अल्पता और कलह का वर्जन-यह विहार-चर्या (जीवन-चर्या) ऋषियों के लिए प्रशस्त है।

१७४

आइण्णओमाणविज्जणा य
ओसन्नदिट्ठाहडभत्तपाणे।
ससट्ठकप्पेण चरेज्ज भिक्खू
तज्जायसंसट्ठ जई जएज्जा।
(दस चू (२) ६)

आकीर्ण और अवमान नामक भोज का विवर्जन, प्राय दृष्ट-स्थान से लाए हुए भक्त-पान का ग्रहण ऋषियो के लिए प्रशस्त है। भिक्षु ससृष्ट हाथ और पात्र से भिक्षा ले। दाता जो वस्तु दे रहा है उसी से ससृष्ट हाथ और पात्र से भिक्षा लेने का यत्न करे।

अमज्जमंसासि अमच्छरीया
अभिक्खण निव्विगइं गओ य।
अभिक्खण काउस्सग्गकारी
सज्झायजोगो पयओ हवेज्जा।।
(दस चू (२) ७)

साधु मद्य और मास का अभोजी, अमत्सरी, बार-बार विकृतियो को न खाने वाला, बार-बार कायोत्सर्ग करने वाला और स्वाध्याय के लिए विहित तपस्या मे प्रयत्नशील हो।

न पडिन्नवेज्जा सयणासणाइ
सेज्ज निसेज्ज तह भत्तपाण।
गामे कुले वा नगरे व देसे
ममत्तभाव न कहि चि कुज्जा।।
(दस चू (२) ८)

साधु विहार करते समय गृहस्थ को ऐसी प्रतिज्ञा न दिलाए कि वह शयन, आसन, उपाश्रय, स्वाध्याय-भूमि जब मै लौटकर आऊ तब मुझे ही देना। इसी प्रकार भक्त-पान मुझे ही देना—यह प्रतिज्ञा भी न कराए। गाव, कुल, नगर या देश मे कहीं भी ममत्व न करे।

१७७

गिहिणो वेयावडिय न कुज्जा
अभिवायण वदण पूयण च।
असकिलिट्ठेहि सम वसेज्जा
मुणी चरित्तस्स जओ न हाणी।।
(दस चू (२) ६)

साधु गृहस्थ का वैयापृत्य न करे , अभिवादन, वन्दन और पूजन न करे। मुनि सक्लेश-रहित साधुओ के साथ रहे जिससे कि चरित्र की हानि न हो।

न या लभेज्जा निउण सहाय
गुणाहिय वा गुणओ सम वा।
एक्को वि पावाइ विवज्जयतो
विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो।।

(दस चू (२) १०)

यदि कदाचित् अपने से अधिक गुणी अथवा अपने समान गुण वाला निपुण साथी न मिले तो मुनि पाप-कर्मो का वर्जन करता हुआ काम-भोगों में अनासक्त रह अकेला ही (संघ-स्थित) विहार करे।

१७६

सवच्छरं चावि पर पमाणं
वीय च वास न तहि वसेज्जा।
सुत्तस्स मग्गेण चरेज्ज भिक्खू
सुत्तस्स अत्थो जह आणवेइ।।
(दस चू (२) ११)

जिस गाव में मुनि काल के उत्कृष्ट प्रमाण तक रह चुका हो (अर्थात् वर्षाकाल में चातुर्मास और शेषकाल में एक मास रह चुका हो) वहा दो वर्ष (दो चातुर्मास और दो मास) का अन्तर किए बिना न रहे। भिक्षु सूत्रोक्त मार्ग से चले सूत्र का अर्थ जिस प्रकार आज्ञा दे, वैसे चले।

१८०

आणानिद्देसकरे
गुरुणंमुववायकारए।
इंगियागारसंपन्ने
से विणीए त्ति वुच्चई।।
आणाऽनिद्देसकरे
गुरूणमणुववायकारए।
पडिणीए असंबुद्धे
अविणीए त्ति वुच्चई।।
(उत्त १ : २, ३)

जो गुरु की आज्ञा और निर्देश का पालन करता है, गुरु की शुश्रुषा करता है, गुरु के इंगित और आकार को जानता है, वह 'विनीत' कहलाता है।

जो गुरु की आज्ञा और निर्देश का पालन नहीं करता, गुरु की सुश्रुषा नहीं करता, जो गुरु के प्रतिकूल वर्तन करता है और इंगित तथा आकार को नहीं समझता, वह 'अविनीत' कहलाता है।

१८१

अणासवा थूलवया कुसीला
मिउपि चण्ड पकरेति सीसा।
चित्ताणुया लहुदक्खोववेया
पसायए ते हु दुरासय पि।।
(उत्त १ १३)

आज्ञा को न मानने वाले और अट-सट बोलने वाले कुशील शिष्य कोमल स्वभाव वाले गुरु को भी क्रोधी बना देते हैं। चित्त के अनुसार चलने वाले और पटुता से कार्य को सम्पन्न करने वाले शिष्य, दुराशय गुरु को भी प्रसन्न कर लेते हैं।

१८२

न पक्खओ न पुरओ
 नेव किच्चाण पिट्ठओ।
न जुजे ऊरुणा ऊरु
 सयणे नो पडिस्सुणे।।

नेव पल्हत्थिय कुज्जा
 पक्खपिण्ड व सजए।
पाए पसारिए वावि
 न चिट्ठे गुरुणन्तिए।।

(उत्त १ १८, १६)

आचार्यो के बराबर न बैठे। आगे और पीछे भी न बैठे। उनके उरु से अपना उरु सटाकर न बेठे। बिछौने पर बैठा हुआ ही उनके आदेश को स्वीकार न करे, किन्तु उसे छोडकर स्वीकार करे।

सयमी मुनि गुरु के समीप पलथी लगाकर (घुटनो और जघाओ के चारो ओर वस्त्र बांधकर) न बैठे। पक्ष-पिण्ड कर (दोनो हाथो से घुटनो और साथल को वाधकर) तथा पैरो को फेलाकर न बैठे।

आयरिएहिं वाहिन्तो
तुसिणीओ न कयाइ वि।
पसायपेही नियागट्ठी
उवचिट्ठे गुरु सया।।

(उत्त १ : २०)

आचार्यों के द्वारा बुलाए जाने पर किसी भी अवस्था में मौन न रहे। गुरु के प्रसाद को चाहनेवाला मोक्षाभिलाषी शिष्य सदा उनके समीप रहे।

१८४

आलवन्ते लवन्ते वा
न निसीएज्ज कयाइ वि।
चइऊणमासण धीरो
जओ जुत्त पडिस्सुणे।।

आसणगओ न पुच्छेज्जा
नेव सेज्जागओ कया।
आगम्मुक्कुडुओ सन्तो
पुच्छेज्जा पजलीउडो।।

(उत्त १ २१, २२)

धृतिमान् शिष्य गुरु के साथ आलाप करते ओर प्रश्न पूछते समय कमी भी बेठा न रहे, किन्तु वे जो आदेश दे, उसे आसन को छोडकर सयत् मुद्रा मे यत्नपूर्वक स्वीकार करे।

आसन पर अथवा शय्या पर वैठा-बैठा कमी भी गुरु से कोई बात न पूछे। उनके समीप आकर उकडूँ बैठ, हाथ जोडकर पूछे।

मुस परिहरे भिक्खू
न य ओहारिणि वए।
भासादोसं परिहरे
मायं च वज्जए सया।।

(उत्त १ २४)

भिक्षु असत्य का परिहार करे। निश्चयकारिणी भाषा न बोले। भाषा के दोषों को छोडे। माया का सदा वर्जन करे।

१८८

परिवाडीए न चिट्ठेज्जा
    भिक्खू दत्तेसणं चरे।
पडिरूवेण एसित्ता
    मियं कालेण भक्खए।।

नाइदूरमणासन्ने
    नन्नेसिं चक्खुफासओ।
एगो चिट्ठेज्ज भत्तट्ठा
    लंघिया तं नइक्कमे।।

(उत्त १ ३२, ३३)

भिक्षु परिपाटी (पंक्ति) मे खडा न रहे। गृहस्थ द्वारा दिए हुए आहार की एषणा करे। प्रतिरूप (मुनि के वेष) मे एषणा कर यथासमय मित आहार करे।

पहले से ही अन्य भिक्षु खडे हो तो उनसे अति दूर या अति समीप खडा न रहे और देने वाले गृहस्थो की दृष्टि के सामने भी न रहे। किन्तु अकेला (भिक्षुओ और दाता--दोनो की दृष्टि से बचकर) खडा रहे। भिक्षुओ को लाघकर भक्त-पान लेने के लिए न जाए।

१८६

नाइउच्चे व नीए वा
नासन्ने नाइदूरओ।
फासुय परकडं पिण्ड
पडिगाहेज्ज सजए।।

(उत्त १ ३४)

सयमी मुनि प्रासुक और गृहस्थ के लिए बना हुआ आहार ले किन्तु अति ऊंचे या अति नीचे स्थान से लाया हुआ तथा अति समीप या अति दूर से दिया जाता हुआ आहार न ले।

१६०

अप्पपाणेऽप्पबीयमि
पडिच्छन्नमि सवुडे।
समय सजए भुजे
जय अपरिसाडय।।

(उत्त १ ३५)

सयमी मुनि प्राणी और बीज रहित, ऊपर से ढके हुए और पार्श्व मे भित्ति आदि से सवृत उपाश्रय मे अपने सहधर्मी मुनियो के साथ, भूमि पर न गिराता हुआ, यत्नपूर्वक आहार करे।

१६१

सुकडे त्ति सुपक्के त्ति
सुच्छिन्ने सुहडे मडे।
सुणिट्ठिए सुलट्ठे त्ति
सावज्ज वज्जए मुणी।।

(उत्त १ : ३६)

बहुत अच्छा किया है (भोजन आदि), बहुत अच्छा पकाया है (घेवर आदि), बहुत अच्छा छेदा है (पत्ती का साग आदि), बहुत अच्छा हरण किया है (साग की कडवाहट आदि), बहुत अच्छा भरा है (चूरमे मे घी आदि), बहुत अच्छा रस निष्पन्न हुआ है (जलेबी आदि मे) बहुत इष्ट है—मुनि इन सावद्य वचनों का प्रयोग न करे।

१६२

न कोवए आयरियं
अप्पाणं पि न कोवए।
बुद्धोवघाई न सिया
न सिया तोत्तगावेसए।।

(उत्त १ · ४०)

शिष्य आचार्य को कुपित न करे। स्वयं भी कुपित न हो। वह आचार्य का उपघात करने वाला न हो, उनका छिद्रान्वेषी न हो।

१६३

आयरिय कुविय नच्चा
पत्तिएण पसायए।
विज्झवेज्ज पजलिउडो
वएज्ज न पुणो त्ति य।।
(उत्त १ ४१)

आचार्य को कुपित हुआ जानकर विनीत शिष्य प्रतीतिकारक (या प्रीतिकारक) वचनो से प्रसन्न करे। हाथ जोडकर उन्हे शान्त करे और यो कहे कि मैं पुन ऐसा नहीं करूगा।

मणोगय वक्कगयं
जाणित्तायरियस्स उ।
त परिगिज्झ वायाए
कम्मुणा उववायए।।
(उत्त १ ४३)

शिष्य आचार्य के मनोगत और वाक्यगत भावो को जानकर, उनको वाणी से ग्रहण करे और कार्यरूप मे परिणत करे।

पुज्जा जस्स पसीयन्ति
सबुद्धा पुव्वसथुया।
पसन्ना लाभइस्सन्ति
विउलं अट्ठिय सुय।।
(उत्त १ ४६)

विनयशील शिष्य पर तत्त्ववित् पूज्य आचार्य प्रसन्न होते हैं। अध्ययनकाल से पूर्व ही वे उसके विनय समाचरण से परिचित होते हैं। वे प्रसन्न होकर उसे मोक्ष के हेतुभूत विपुल श्रुतज्ञान का लाभ करवाते हैं।

१६६

स पुज्जसत्थे सुविणीयससए
मणोरुई चिट्ठइ कम्मसपया।
तवोसमायारिसमाहिसवुडे
महज्जुई पचवयाइ पालिया।।
(उत्त १ ४७)

विनीत शिष्य पूज्य-शास्त्र होता है। उसके शास्त्रीय ज्ञान का बहुत सम्मान होता है। उसके सारे सशय मिट जाते हैं। वह गुरु के मन को भाता है। वह कर्म-सम्पदा (दस विध सामाचारी) से सम्पन्न होकर रहता है। वह तप सामाचारी और समाधि से सवृत होता है। वह पाच महाव्रतो का पालन कर महान् तेजस्वी हो जाता है।

स देवगन्धव्वमणुस्सपूइए
चइत्तु देह मलपकपुव्वय।
सिद्धे वा हवइ सासए
देवे वा अप्परए महिड्ढिए।।
(उत्त १ ४८)

देव, गन्धर्व और मनुष्यो से पूजित वह विनीत शिष्य मल और पक से बने हुए शरीर को त्यागकर या तो शाश्वत सिद्ध होता है या अल्पकर्म वाला महर्द्धिक देव होता है।

१६८

दिगिछापरिगए देहे
तवस्सी भिक्खु थामव।
न छिंदे न छिदावए
न पए न पयावए।।

कालीपव्वगसकासे
किसे घमणिसंतए।
मायण्णे असणपाणस्स
अदीणमणसो चरे।।

(उत्त २ · २, ३)

देह मे क्षुधा व्याप्त होने पर तपस्वी और प्राणवान् भिक्षु फल आदि का छेदन न करे, न कराए। उन्हें न पकाए और न पकवाए।

शरीर के अग भूख से सूखकर काकजघा नामक तृण जेसे दुर्वल हो जाए, शरीर कृप हो जाए, घमनियो का ढाचा भर रह जाए तो भी आहार-पानी की मर्यादा को जाननेवाला साघु अदीनभाव से विहरण करे।

१६६

तओ पुट्ठो पिवासाए
    दोगुछी लज्जसजए।
सीओदग न सेविज्जा
    वियडस्सेसण चरे।।

छिन्नावाएसु पंथेसु
    आउरे सुपिवासिए।
परिसुक्कमुहेदीणे
    तं तितिक्खे परीसहं।।

(उत्त २ ४, ५)

अहिंसक या करुणाशील लज्जावान् सयमी साधु प्यास से पीडित होने पर सचित्त पानी का सेवन न करे, किन्तु प्रासुक जल की एषणा करे।

निर्जन मार्ग मे जाते समय प्यास से अत्यन्त आकुल हो जाने पर, मुंह सूख जाने पर भी साधु अदीनभाव से प्यास के परीषह को सहन करे।

२००

चरत विरय लूहं
सीय फुसइ एगया।
नाइवेल मुणी गच्छे
सोच्चाण जिणसासण।।

न मे निवारण अत्थि
छवित्ताण न विज्जई।
अह तु अग्गि सेवामि
इइ भिक्खू न चितए।।

(उत्त २ : ६, ७)

विचरते हुए, विरत और रुक्ष शरीर वाले साधु को शीत ऋतु मे सर्दी सताती है। फिर भी वह जिन-शासन को सुनकर (आगम के उपदेश को ध्यान मे रखकर) स्वाध्याय आदि की वेला (अथवा मर्यादा) का अतिक्रमण न करे।

शीत से प्रताडित होने पर मुनि ऐसा न सोचे--मेरे पास शीत-निवारक घर आदि नहीं है और छवित्राण (वस्त्र, कम्बल आदि) भी नहीं है, इसलिए मै अग्नि का सेवन करू।

२०१

उसिणपरियावेणं
परिदाहेण तज्जिए।
घिंसु वा परियावेण
सायं नो परिदेवए।।

उण्हाहितत्ते मेहावी
सिणाणं नो वि पत्थए।
गायं नो परिसिंचेज्जा
न वीएज्जा य अप्पयं।।

(उत्त २ : ८, ६)

गरम धूलि आदि के परिताप, स्वेद, मैल या प्यास के दाह अथवा ग्रीष्मकालीन सूर्य के परिताप से अत्यन्त पीडित होने पर भी मुनि सुख के लिए विलाप न करे, आकुल-व्याकुल न बने।

गर्मी से अभितप्त होने पर भी मेधावी मुनि स्नान की इच्छा न करे। शरीर को गीला न करे। पंखे से शरीर पर हवा न ले।

पुट्ठो य दसमसएहि
समरेव महामुणी।
नागो सगामसीसे वा
सूरो अभिहणे पर।।

न सतसे न वारेज्जा
मण पि न पओसए।
उवेहे न हणे पाणे
भुजते मससोणिय।।

(उत्त २ १०, ११)

डास और मच्छरो का उपद्रव होने पर भी महामुनि समभाव मे रहे, कोध आदि का वैसे ही दमन करे जैसे युद्ध के अग्रभाग मे रहा हुआ शूर शत्रुओ का हनन करता है।

भिक्षु उन दश-मशको से सत्रस्त न हो, उन्हे हटाए नहीं। मन मे भी उनके प्रति द्वेष न लाए। मास और रक्त खाने-पीने पर भी उनकी उपेक्षा करे, किन्तु उनका हनन न करे।

२०३

परिजुण्णेहिं वत्थेहिं
    होक्खामि त्ति अचेलए।
अदुवा सचेलए होक्ख
    इइ भिक्खू न चिंतए।।

एगयाचेलए होइ
    सचेले यावि एगया।
एयं धम्महियं नच्चा
    नाणी नो परिदेवए।।

(उत्त २ · १२, १३)

वस्त्र फट गए हैं इसलिए मैं अचेल हो जाऊगा अथवा वस्त्र मिलने पर फिर मैं सचेल हो जाऊगा—मुनि ऐसा न सोचे। (दीन और हर्ष दोनो प्रकार का भाव न लाए)।

जिन-कल्पदशा मे अथवा वस्त्र न मिलने पर मुनि अचेलक भी होता है और स्थविर-कल्पदशा मे वह सचेलक भी होता है। अवस्था-भेद के अनुसार इन दोनों (सचेलत्व और अचेलत्व) को यतिधर्म के लिए हितकर जानकर ज्ञानी मुनि वस्त्र न मिलने पर दीन न बने।

२०४

गामाणुगाम रीयत
अणगारं अकिंचणं।
अरई अणुप्पविसे
त तितिक्खे परीसहं।।

अरइ पिट्ठओ किच्चा
विरए आयरविक्खए।
धम्मारामे निरारभे
उवसते मुणी चरे।।
(उत्त २ १४, १५)

एक गाव से दूसरे गाव मे विहार करते हुए अकिंचन मुनि के चित्त मे अरति उत्पन्न हो जाय तो उस परीषह को वह सहन करे।

हिंसा आदि से विरत रहने वाला, आत्मा की रक्षा करने वाला, धर्म मे रमण करने वाला, असत्-प्रवृत्ति से दूर रहने वाला, उपशान्त मुनि अरति को दूर कर विहरण करे।

२०५

सगो एस मणुस्साण
जाओ लोगमि इत्थिओ।
जस्स एया परिण्णाया
सुकड तस्स सामण्ण।।

एवमादाय मेहावी
पकभूया उ इत्थिओ।
नो ताहि विणिहन्नेज्जा
चरेज्जत्तगवेएस।।

(उत्त. २ १६, १७)

लोक में जो स्त्रिया हैं, वे मनुष्यों के लिए सग हैं—लेप हैं। जो इस बात को जान लेता है, उसके लिए श्रामण्य सुखकर है।

स्त्रिया ब्रह्मचारी के लिए दल-दल के समान हैं—यह जानकर मेधावी मुनि उनसे अपने सयम-जीवन की घात न होने दे, किन्तु आत्मा की गवेषणा करता हुआ विचरण करे।

२०६

एग एव चरे लाढे
अभिभूय परीसहे।
गामे वा नगरे वावि
निगमे वा रायहाणिए।।

असमाणो चरे भिक्खू
नेव कुज्जा परिग्गह।
अससत्तो गिहत्थेहि
अणिएओ परिव्वए।।

(उत्त २ : १८, १६)

सयम के लिए जीवन-निर्वाह करने वाला मुनि परिषहो को जीतकर गाव में या नगर मे, निगम मे या राजधानी मे, अकेला (राग-द्वेष रहित होकर) विचरण करे।

मुनि एक स्थान पर आश्रम बनाकर न बैठे किन्तु विचरण करता रहे। गांव आदि के साथ ममत्व न करे, उनसे प्रतिबद्ध न हो। गृहस्थो से निर्लिप्त रहे। अनिकेत (गृह-मुक्त) रहता हुआ परिव्रजन करे।

सुसाणे सुन्नगारे वा
रुक्खमूले व एगओ।
अकुक्कुओ निसीएज्जा
न य वित्तासए परं।।

तत्थ से चिट्ठमाणस्स
उवसग्गाभिधारए।
संकाभीओ न गच्छेज्जा
उट्ठित्ता अन्नमासणं।।

(उत्त २ : २०, २१)

राग-द्वेष रहित मुनि चपलताओ का वर्जन करता हुआ श्मशान, शून्यगृह अथवा वृक्ष के मूल मे बैठे। दूसरों को त्रास न दे।

वहा बैठे हुए उसे उपसर्ग प्राप्त हो तो वह यह चिन्तन करे—"ये मेरा क्या अनिष्ट करेंगे ?" किन्तु अपकार की शका से डरकर वहा से उठ दूसरे स्थान पर न जाए।

उच्चावयाहिं सेज्जाहि
तवस्सी भिक्खु थामव।
नाइवेल विहन्नेज्जा
पावदिट्ठी विहन्नई।।

पइरिक्कुवस्सय लद्धु
कल्लाण अदु पावग।
किमेगराय करिस्सइ
एव तत्थऽहियासए।।

(उत्त २ . २२, २३)

तपस्वी और प्राणवान् भिक्षु उत्कृष्ट या निकृष्ट उपाश्रय को पाकर मर्यादा का अतिक्रमण न करे (हर्ष या शोक न लाए)। जो पाप-दृष्टि होता है, वह विहत हो जाता है (हर्ष या शोक से आक्रान्त हो जाता है)।

प्रतिरिक्त (एकान्त) उपाश्रय--भले फिर वह सुन्दर हो या असुन्दर--को पाकर "एक रात मे क्या हो जाना है"--ऐसा सोचकर रहे, जो भी सुख-दु ख हो उसे सहन करे।

२०६

अक्कोसेज्ज परो भिक्खु
न तेसिं पडिसजले।
सरिसो होइ बालाण
तम्हा भिक्खू न संजले।।

सोच्चाण फरुसा भासा
दारुणा गामकटगा।
तुसिणीओ उवेहेज्जा
न ताओ मणसीकरे।।

(उत्त २ . २४, २५)

कोई मनुष्य भिक्षु को गाली दे तो वह उसके प्रति क्रोध न करे। क्रोध करने वाला भिक्षु बालको (अज्ञानियो) के सदृश हो जाता है, इसलिए भिक्षु क्रोध न करे।

मुनि परुष, दारुण और ग्राम-कटक (कर्ण-कटुक) भाषा को सुनकर मौन रहता हुआ उसकी उपेक्षा करे, उसे मन मे न लाए।

हओ न संजले भिक्खू
मणं पि न पओसए।
तितिक्खं परमं नच्चा
भिक्खुधम्मं विचिंतए।।

समणं संजयं दंतं
हणेज्जा कोइ कत्थई।
नत्थि जीवस्स नासु त्ति
एवं पेहेज्ज संजए।।
(उत्त २ : २६, २७)

पीटे जाने पर भी मुनि क्रोध न करे, मन में भी द्वेष न लाए। तितिक्षा को परम जानकर मुनि-धर्म का चिन्तन करे।

संयत और दान्त श्रमण को कोई कहीं पीटे तो वह आत्मा का नाश नहीं होता—ऐसा चिन्तन करे, पर प्रतिशोध की भावना न लाए।

दुक्करं खलु भो ! निच्चं
अणगारस्स भिक्खुणो।
सव्व से जाइय होइ
नत्थि किंचि अजाइयं।।

गोयरग्गपविट्ठस्स
पाणी नो सुप्पसारए।
सेओ अगारवासु त्ति
इइ भिक्खू न चिंतए।।

(उत्त २ : २८, २९)

ओह ! अनगार भिक्षु की यह चर्या कितनी कठिन है कि उसे जीवन-भर सब कुछ याचना से मिलता है। उसके पास अयाचित कुछ भी नहीं होता।

गोचराग्र में प्रविष्ट मुनि के लिए गृहस्थो के सामने हाथ पसारना सरल नहीं है। अत गृहवास ही श्रेय है—मुनि ऐसा चिन्तन न करे।

२१२

परेसु घासमेसेज्जा
भोयणे परिणिट्ठिए।
लद्धे पिडे अलद्धे वा
नाणुतप्पेज्ज सजए।।

अज्जेवाहं न लब्भामि
अवि लाभो सुए सिया।
जो एव पडिसंविक्खे
अलाभो त न तज्जए।।

(उत्त २ · ३०, ३१)

गृहस्थो के घर भोजन तैयार हो जाने पर मुनि उसकी एषणा करे। आहार थोडा मिलने या न मिलने पर सयमी मुनि अनुताप न करे।

आज मुझे भिक्षा नहीं मिली, परन्तु सभव है कल मिल जाय—जो इस प्रकार सोचता है, उसे अलाभ नहीं सताता।

२१३

नच्चा उप्पइयं दुक्ख
वेयणाए दुहट्टिए।
अदीणो थावए पन्न
पुट्ठो तत्थहियासए।।

तेगिच्छ नाभिनदेज्जा
सचिक्खत्तगवेसए।
एयं खु तस्स सामण्ण
ज न कुज्जा न कारवे।।
(उत्त २ ३२, ३३)

रोग को उत्पन्न हुआ जानकर तथा वेदना से पीडित होने पर दीन न बने। व्याधि से विचलित होती हुई प्रज्ञा को स्थिर बनाए और प्राप्त दुःख को समभाव से सहन करे।

आत्म-गवेषक मुनि चिकित्सा का अनुमोदन न करे। रोग हो जाने पर समाधिपूर्वक रहे। उसका श्रामण्य यही है कि वह रोग उत्पन्न होने पर भी चिकित्सा न करे, न कराए।

२१४

अचेलगस्स लूहस्स
संजयस्स तवस्सिणो।
तणेसु सयमाणस्स
हुज्जा गायविराहणा।।

आयवस्स निवाएणं
अउला हवइ वेयणा।
एवं नच्चा न सेवंति
तंतुजं तणतज्जिया।।

(उत्त २ : ३४, ३५)

अचेलक और रुक्ष शरीर वाले संयत तपस्वी के घास पर सोने से शरीर में चुभन होती है।

गर्मी पडने से अतुल वेदना होती है—यह जानकर भी तृण से पीडित मुनि वस्त्र का सेवन नहीं करते।

किलिन्नगाए मेहावी
पंकेण व रएण वा।
घिंसु वा परितावेण
सायं नो परिदेवए।।

वेएज्ज निज्जरापेही
आरियं धम्मऽणुत्तरं।
जाव सरीदरभेउ त्ति
जल्ल काएण धारए।।

(उत्त २ : ३६, ३७)

मैल, रज या ग्रीष्म के परिताप से शरीर के क्लिन्न (गीला या पंकिल) हो जाने पर मेधावी मुनि सुख के लिए विलाप न करे।

निर्जरार्थी मुनि अनुत्तर आर्य-धर्म (श्रुत-चारित्र धर्म) को पाकर देह-विनाश पर्यन्त काया पर 'जल्ल' (स्वेद-जनित मैल) को धारण करे और तज्जनित परीषह को सहन करे।

२१६

अभिवायणमब्भुट्ठाण
सामी कुज्जा निमतणं।
जे ताइं पडिसेवंति
न तेसि पीहए मुणी।।

अणुक्कसाई अप्पिच्छे
अण्णएसी अलोलुए।
रसेसु नाणुगिज्झेज्जा
नाणुतप्पेज्ज पण्णव।।

(उत्त २ ३८, ३९)

अभिवादन और अभ्युत्थान करना तथा 'स्वामी'—इस सबोधन से संबोधित करना—जो गृहस्थ इस प्रकार की प्रतिसेवना, सम्मान करते हैं, मुनि इन सम्मानजनक व्यवहारो की स्पृहा न करे।

अल्प कषाय वाला, अल्प इच्छा वाला, अज्ञात कुलो से भिक्षा लेने वाला, अलोलुप भिक्षु रसो में गृद्ध न हो। प्रज्ञावान् मुनि दूसरो को सम्मानित देख अनुताप न करे।

से नूणं मए पुव्वं
कम्माणाणफला कडा।
जेणाह नाभिजाणामि
पुट्ठो केणइ कण्हुई।।

अह पच्छा उइज्जंति
कम्माणाणफला कडा।
एवमस्सासि अप्पाण
नच्चा कम्मविवागयं।।

(उत्त. २ : ४०, ४१)

निश्चय ही मैंने पूर्वकाल में अज्ञानरूप-फल देने वाले कर्म किए हैं। उन्हीं के कारण मैं किसी के कुछ पूछे जाने पर भी कुछ नहीं जानता—उत्तर देना नहीं जानता।

पहले किए हुए अज्ञानरूप-फल देनेवाले कर्म पकने के पश्चात् उदय मे आते हैं—इस प्रकार कर्म के विपाक को जानकर मुनि आत्मा को आश्वासन दे।

२१८

निरट्ठगम्मि विरओ
मेहुणाओ सुसंवुडो।
जो सक्खं नाभिजाणामि
धम्मं कल्लाण पावग।।

तवोवहाणमादाय
पडिमं पडिवज्जओ।
एवं पि विहरओ मे
छउमं न नियट्टई।।

(उत्त. २ : ४२, ४३)

मै मैथुन से निवृत्त हुआ, इन्द्रिय और मन का मैंने संवरण किया—यह सब निरर्थक है। क्योंकि धर्म कल्याणकारी है या पापकारी—यह मैं साक्षात् नहीं जानता।

तपस्या और उपधान को स्वीकार करता हूं, प्रतिमा का पालन करता हूँ, इस प्रकार विशेष चर्या से विहरण करने पर भी मेरा छद्म (ज्ञान का आवरण) निवर्तित नहीं हो रहा है—ऐसा चिन्तन न करे।

२१६

नत्थि नूणं परे लोए
इड्ढी वावि तवस्सिणो।
अदुवा वंचिओ मि त्ति
इइ भिक्खू न चिंतए।।

अभू जिणा अत्थि जिणा
अदुवावि भविस्सई।
मुसं ते एवमाहंसु
इइ भिक्खू न चिंतए।।

(उत्त. २ . ४४, ४५)

निश्चय ही परलोक नहीं है, तपस्वी की ऋद्धि भी नहीं है, अथवा मैं ठगा गया हूं—भिक्षु ऐसा चिन्तन न करे।

जिन हुए थे, जिन हैं और जिन होंगे—ऐसा जो कहते हैं वे झूठ बोलते हैं—भिक्षु ऐसा चिन्तन न करे।

२२०

छद निरोहेण उवेइ मोक्खं
आसे जहा सिक्खियवम्मधारी।
पुव्वाइ वासाइं चरप्पमत्तो
तम्हा मुणी खिप्पमुवेइ मोक्ख।।
(उत्त ४ ८)

शिक्षित (शिक्षक के अधीन रहा हुआ) और तनुत्राणधारी अश्व जैसे रण का पार पा जाता है, वैसे ही स्वच्छन्दता का निरोध करने वाला मुनि ससार का पार पा जाता है। पूर्व जीवन मे जो अप्रमत्त होकर विचरण करता है, वह उस अप्रमत्त-विहार से शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त होता है।

मुहु मुहु मोहगुणे जयत
अणेगरूवा समण चरत।
फासा फुसंती असमजस च
न तेसु भिक्खू मणसा पउस्से।।
(उत्त ४ · ११)

बार-बार मोहगुणो पर विजय पाने का यत्न करने वाले उग्र-विहारी श्रमण को अनेक प्रकार के प्रतिकूल स्पर्श पीडित करते हैं, असतुलन पैदा करते हैं। किन्तु वह उन पर मन से भी प्रद्वेष न करे।

२२२

चीराजिणं नगिणिणं
जडी संघाडि मुंडिणं।
एयाणि वि न तायंति
दुस्सीलं परिणागयं।।

(उत्त. ५ : २१)

चीवर, चर्म, नग्नत्व, जटाधारीपन, संघाटी (उत्तरीय वस्त्र) और सिर मुंडाना—ये सब दुष्ट शील वाले साधु की रक्षा नहीं करते।

२२३

अह जे सवुडे भिक्खू
दोण्हं अन्नयरे सिया।
सव्वदुक्खप्पहीणे वा
देवे वावि महड्ढिए।।
(उत्त ५ : २५)

जो सवृत भिक्षु होता है, वह दोनो मे से एक होता है—सब दु:खो से मुक्त या महान ऋद्धि वाला देव।

२२४

तुलिया विसेसमादाय
दयाधम्मस्स खंतिए।
विप्पसीएज्ज मेहावी
तहाभूएण अप्पणा।।

(उत्त ५ : ३०)

मेधावी मुनि अपने आपको तोलकर, अकाम और सकाम-मरण के भेद को जानकर अहिंसा, धर्मोचित सहिष्णुता और तथाभूत (उपशान्त मोह) आत्मा के द्वारा प्रसन्न रहे, मरणकाल मे उद्विग्न न बने।

२२५

तओ काले अभिप्पेए
सड्ढी तालिसमतिए।
विणएज्ज लोमहरिस
भेय देहस्स कखए।।
(उत्त ५ · ३१)

जब मरण अभिप्रेत हो, उस समय जिस श्रद्धा से मुनिधर्म या संलेखना[1] को स्वीकार किया, वैसी ही श्रद्धा रखने वाला भिक्षु गुरु के समीप कष्टजनित रोमाच को दूर करे, शरीर के भेद की प्रतीक्षा करे—उसकी सार-संभाल न करे[2]।

१ तप से शरीर को कृष करने की प्रकिया।

२ जब धर्म-लाभ की स्थिति न रहे तब आहार के सम्पूर्ण त्याग द्वारा शरीर-विसर्जन करना।

२२६

अह कालमि सपत्ते
आघायाय समुस्सय।
सकाममरणं मरई
तिण्हमन्नयर मुणी।।
(उत्त. ५ ३२)

वह मरणकाल प्राप्त होने पर संलेखना के द्वारा शरीर का त्याग करता है, भक्त-परिज्ञा, इङ्गिनी या प्रायोपगमन— इन तीनों में से किसी एक को स्वीकार कर सकाम-मरण से मरता है।

२२७

आयाण नरय दिस्स
नायएज्ज तणामवि।
दोगुंछी अप्पणो पाए
दिन्न भुंजेज्ज भोयण।।

(उत्त ६ ७)

परिग्रह नरक है—यह देखकर मुनि एक तिनके को भी अपना बनाकर न रखे। अहिंसक या करुणाशील मुनि अपने पात्र में गृहस्थ द्वारा प्रदत्त भोजन करे।

२२८

विविच्च कम्मुणो हेउ
कालकखी परिव्वए।
माय पिण्डस्स पाणस्स
कडं लद्धूण भक्खए।।

(उत्त ६ १४)

कर्म के हेतुओ का विवेचन (विश्लेषण या पृथक्करण) कर मुनि मृत्यु की प्रतीक्षा करता हुआ विचरे। सयम-निर्वाह के लिए आहार और पानी की जितनी मात्रा आवश्यक हो उतनी गृहस्थ के घर मे सहज निष्पन्न भोजन से प्राप्त कर आहार करे।

२२६

सन्निहिं च न कुव्वेज्जा
लेवमायाए सजए।
पक्खी पत्त समादाय
निरवेक्खो परिव्वए।।

(उत्त ६ १५)

सयमी मुनि पात्रगत लेप को छोडकर अन्य किसी प्रकार के आहार का सग्रह न करे। जैसे पक्षी अपने पखो को साथ लिए उड जाता है वैसे ही मुनि अपने पात्रो को साथ ले, निरपेक्ष हो, परिव्रजन करे।

एसणासमिओ लज्जू
गामे अणियओ चरे।
अप्पमत्तो पमत्तेहि
पिडवायं गवेसए।।

(उत्त ६ १६)

एषणा-समिति से युक्त और लज्जावान् मुनि गावों मे अनियत-चर्या करे। वह अप्रमत्त रहकर गृहस्थो से पिण्डपात की गवेषणा करे।

तुलियाण बालभाव
अबालं चेव पडिए।
चइऊण बालभाव
अबाल सेवए मुणि।।

(उत्त ७ ३०)

पण्डित मुनि बाल-भाव ओर अबाल-भाव की तुलना कर, बाल-भाव को छोड, अबाल-भाव का सेवन करता है।

२३२

विजहित्तु पुव्वसजोग
न सिणेहं कहिंचि कुव्वेज्जा।
असिणेह सिणेहकरेहि
दोसपओसेहिं मुच्चए भिक्खू।।
(उत्त ८ २)

पूर्व सम्बन्धो को त्याग कर, किसी के साथ स्नेह न करे। स्नेह करने वालो के साथ भी स्नेह न करने वाला भिक्षु दोषो और प्रदोषो से मुक्त हो जाता है।

२३३

सव्व गथ कलहं च
विप्पजहे तहाविह भिक्खू।
सव्वेसु कामजाएसु
पासमाणो न लिप्पई ताई।।
(उत्त ८ . ४)

भिक्षु कर्मबन्ध की हेतुभूत सभी ग्रन्थियों और कलह का त्याग करे। कामभोगो के सब प्रकारों में दोष देखता हुआ वीतराग तुल्य मुनि उसमें लिप्त न बने।

२३४

सुद्धेसणाओ नच्चाणं
तत्थ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाण।
जायाए घासमेसेज्जा
रसगिद्धे न सिया भिक्खाए।।
(उत्त ८ · ११)

भिक्षु शुद्ध एषणाओ को जानकर उनमे अपनी आत्मा को स्थापित करे। यात्रा (संयम-निर्वाह) के लिए भोजन की एषणा करे। भिक्षा-र े रसो मे गृद्ध न हो।

२३५

पंताणि चेव सेवेज्जा
    सीयपिंड पुराणकुम्मास।
अदु वुक्कस पुलाग वा
    जवणट्ठाए निसेवए मथु।।
(उत्त ८ १२)

भिक्षु इन्द्रिय-संयम के लिए प्रान्त (नीरस) अन्न-पान, शीत-पिण्ड, पुराने उड़द, बुक्कस (सारहीन), पुलाक (रूखा) या मथु (वैर या सत्तू का चूर्ण) का सेवन करे।

जे लक्खण च सुविण च
अगविज्जं च जे पउंजति।
न हु ते समणा वुच्चंति
एव आयरिएहि अक्खाय।।
(उत्त ८ · १३)

जो लक्षण-शास्त्र, स्वप्न-शास्त्र और अङ्ग-विद्या का प्रयोग करते हैं, उन्हे साधु नहीं कहा जाता—ऐसा आचार्यों ने कहा है।

२३७

नारीसु नो पगिज्झेज्जा
इत्थीविप्पजहे अणगारे।
धम्मं च पेसलं नच्चा
तत्थ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाणं।।
(उत्त ८ : १९)

स्त्रियों को त्यागने वाला अनगार उनमें गृद्ध न बने। भिक्षु-धर्म को अति मनोज्ञ जानकर उसमे अपनी आत्मा को स्थापित करे।

सुह वसामो जीवामो
जेसिं मो नत्थि किचण।
मिहिलाए डज्झमाणीए
न मे डज्झइ किचण।।
(उत्त ६ १४)

श्रमण सोचते हैं—"हम लोग, जिनके पास अपना कुछ भी नहीं है, सुखपूर्वक रहते और सुख से जीते हैं। मिथिला जल रही है उसमे मेरा कुछ भी नहीं जल रहा है।"

२३६

चत्तपुत्तकलत्तस्स
निव्वावारस्स भिक्खुणो।
पिय न विज्जई किंचि
अप्पियं पि न विज्जए।।

(उत्त ६ १५)

पुत्र और स्त्रियों से मुक्त तथा व्यवसाय से निवृत्त भिक्षु के लिए कोई वस्तु प्रिय भी नहीं होती और अप्रिय भी नहीं होती।

२४०

बहु खु मुणिणो भद्द
अणगारस्स भिक्खुणो।
सव्वओ विप्पमुक्कस्स
एगतमणुपस्सओ।।

(उत्त. ६ १६)

सब बन्धनो से मुक्त, 'मैं अकेला हू, मेरा कोई नहीं'—इस प्रकार एकत्व-दर्शी, गृह-त्यागी एवं तपस्वी भिक्षु को विपुल सुख होता है।

२४१

सद्धं नगर किच्चा
    तवसवरमग्गल।
खति निउणपागार
    तिगुत्त दुप्पधसय।।
धणु परक्कम किच्चा
    जीव च इरिय सया।
धिइ च केयण किच्चा
    सच्चेण पलिमथए।।
तवनारायजुत्तेण
    भेत्तूण कम्मकंचुयं।
मुणी विगयसंगामो
    भवाओ परिमुच्चए।।

(उत्त ६ २०-२२)

श्रद्धा को नगर, तप और संयम को अर्गला, क्षमा या सहिष्णुता को त्रिगुप्त–बुर्ज, खाई और शतघ्नी स्थानीय मन, वचन और कायगुप्ति से सुरक्षित, दुर्जेय और सुरक्षा-निपुण परकोटा बना, पराकम को धनुष, ईर्यापथ को उसकी डोर और धृति को उसकी मूठ बना उसे सत्य से बाधे।

तप-रूपी लोह-बाण से युक्त धनुष के द्वारा कर्म-रूपी कवच को भेद डाले। इस प्रकार सग्राम का अन्त कर मुनि ससार से मुक्त हो जाता है।

२४२

अहो ! ते निज्जिओ कोहो
अहो ! ते माणो पराजिओ।
अहो ! ते निरक्किया माया
अहो ! ते लोभो वसीकओ।।

अहो ! ते अज्जव साहु
अहो ! ते साहु मद्दव।
अहो ! ते उत्तमा खती
अहो ! ते मुत्ति उत्तमा।।

इहं सि उत्तमो भंते !
पेच्चा होहिसि उत्तमो।
लोगुत्तमुत्तम ठाणं
सिद्धि गच्छसि नीरओ।।

(उत्त. ६ : ५६-५८)

देवेन्द्र ने नमि राजर्षि के वैराग्य की प्रशंसा करते हुए कहा—"हे राजर्षि ! आश्चर्य है तुमने क्रोध को जीता है ! आश्चर्य है तुमने मान को पराजित किया है ! आश्चर्य है तुमने माया को दूर किया है ! आश्चर्य है तुमने लोभ को वश मे किया है ! अहो ! उत्तम है तुम्हारा आर्जव। अहो! उत्तम है तुम्हारा मार्दव। अहो ! उत्तम है तुम्हारी क्षमा या सहिष्णुता। अहो ! उत्तम है तुम्हारी निर्लोभता।

भगवन् ! तुम इस लोक मे भी उत्तम हो और परलोक मे भी उत्तम होओगे। तुम कर्म-रज से मुक्त होकर लोक के सर्वोत्तम स्थान (मोक्ष) को प्राप्त करोगे।"

२४३

नमी नमेइ अप्पाणं
सक्ख सक्केण चोइओ।
चइऊण गेह वइदेही
सामण्णे पज्जुवट्ठिओ।।

एवं करेंति सबुद्धा
पंडिया पवियक्खणा।
विणियट्टति भोगेसु
जहा से नमी रायरिसि।।

(उत्त. ६ : ६१, ६२)

नमि राजर्षि ने अपनी आत्मा को नमा लिया, संयम के प्रति समर्पित कर दिया। साक्षात् देवेन्द्र के द्वारा प्रेरित होने पर भी वे धर्म से विचलित नहीं हुए और गृह और वैदेही (मिथिला) को त्यागकर श्रामण्य में उपस्थित हो गये।

संबुद्ध, पण्डित और प्रविचक्षण पुरुष इसी प्रकार करते हैं—वे भोगों से निवृत्त होते हैं जैसे कि नमि राजर्षि हुए।

चिच्चाण धण च भारिय
पव्वइओ हि सि अणगारिय।
मा वत पुणो वि आइए
सयम गोयम ! मा पमायए।।

(उत्त १० २६)

गाय आदि धन और पत्नी का त्याग कर तू अनगार-वृत्ति के लिए घर से निकला है। वमन किए हुए काम-भोगो को फिर से मत पी। हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर।

२४५

न हु जिणे अज्ज दिस्सई
बहुमए दिस्सई मग्गदेसिए।
सपइ नेयाउए पहे
समयं गोयमं ! मा पमायए।।
(उत्त १० ३१)

'आज जिन नहीं दीख रहे हैं, जो मार्गदर्शक हैं वे एक मत नहीं हैं'—अगली पीढियो को इस कठिनाई का अनुभव होगा, किन्तु अभी मेरी उपस्थिति मे तुझे पार ले जाने वाला पथ प्राप्त है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर।

२४६

अवसोहिय कंटगापहं
ओइण्णो सि पह महालय।
गच्छसि मग्ग विसोहिया
समय गोयम ! मा पमायए।।
(उत्त १०   ३२)

कांटो से भरे मार्ग को छोडकर तू विशाल पथ पर चला आया है। दृढनिश्चय के साथ उसी मार्ग पर चल। हे गौतम! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर।

२४७

अबले जह भारवाहए
मा मग्गे विसमेऽवगाहिया।
पच्छा पच्छाणुतावए
समय गोयम ! मा पमायए।।
(उत्त १० ३३)

बलहीन भारवाहक की भांति तू विषय-मार्ग मे मत चले जाना। विषय-मार्ग में जाने वाले को पछतावा होता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर।

२४८

तिण्णो हु सि अण्णवं मह
किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ।
अभितुर पार गमित्तए
समय गोयम ! मा पमायए।।
(उत्त १० : ३४)

तू महान समुद्र को तैर गया है, अब तीर के निकट पहुंचकर क्यो खडा है ? उसके पार जाने के लिए जल्दी कर। हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर।

अकलेवरसेणिमुस्सिया
सिद्धिं गोयम ! लोय गच्छसि।
खेमं च सिव अणुत्तरं
समयं गोयम ! मा पमायए।।

(उत्त. १० : ३५)

हे गौतम ! तू क्षपक-श्रेणी पर आरूढ होकर उस सिद्धिलोक को प्राप्त होगा, जो क्षेम, शिव और अनुत्तर है। इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर।

२५०

बुद्धे परिनिव्वुडे चरे
गामगए नगरे व संजए।
संतिमग्ग च बूहए
समय गोयम ! मा पमायए।।
(उत्त १० . ३६)

तू गाव मे या नगर मे सयत, बुद्ध और उपशान्त होकर विचरण कर, शातिमार्ग को बढा। हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर।

जहा सखम्मि पय
निहिय दुहओ वि विरायइ।
एव बहुस्सुए भिक्खू
धम्मो कित्ती तहा सुय।।
(उत्त ११ १५)

जिस प्रकार शङ्ख मे रखा हुआ दूध दोनो ओर (अपने और अपने आधार के गुणो) से सुशोभित होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भिक्षु मे धर्म, कीर्ति और श्रुत दोनो ओर (अपने और अपने आधार के गुणो) से सुशोभित होते हैं।

२५२

जहा से कंबोयाण
आइण्णे कथए सिया।
आसे जवेण पवरे
एव हवइ बहुस्सुए।।
(उत्त ११ १६)

जिस प्रकार कम्बोज के घोडो मे से कन्थक घोडा शील आदि गुणो से आकीर्ण और वेग से श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार भिक्षुओ मे बहुश्रुत श्रेष्ठ होता है।

२५४

जहा से चाउरते
चक्कवट्टी महिड्ढिए।
चउदसरयणाहिवई
एवं हवइ बहुस्सए।।
(उत्त ११ २२)

जिस प्रकार महान् ऋद्धिशाली चतुरन्त चक्रवर्ती चौदह रत्नो का अधिपति होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत चतुर्दश पूर्वधर होता है।

२५६

जहा सा दुमाण पवर
जबू नाम सुदसणा।
अणाढियस्स देवस्स
एव हवइ बहुस्सए।।

(उत्त ११ २७)

जिस प्रकार अनादृत देव का आश्रय सुदर्शना नाम का जम्बू वृक्ष सब वृक्षो मे श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत सब साधुओ मे श्रेष्ठ होता है।

जहा सा नईण पवरा
सलिला सागरगमा।
सीया नीलवतपवहा
एव हवइ बहुस्सुए।।
(उत्त ११ २८)

जिस प्रकार नीलवान् पर्वत से निकलकर समुद्र मे मिलने वाली शीता नदी शेष नदियो मे श्रेष्ठ है, उसी प्रकार बहुश्रुत सब साधुओ मे श्रेष्ठ होता है।

२५८

समुद्दगभीरसमा् दुरासया
अचक्किया केणइ दुप्पहसया।
सुयस्स पुण्णा विउलस्स ताइणो
खवित्तु कम्म गइमुत्तमं गया।।
(उत्त ११ - ३१)

समुद्र के समान गम्भीर, दुराशय—जिसके आशय तक पहुचना सरल न हो, शक्य—जिसके ज्ञानसिन्धु को लाघना शक्य न हो, किसी प्रतिवादी के द्वारा अपराजेय और विपुलश्रुत से पूर्ण वैसे बहुश्रुत मुनि कर्मो का क्षय करते उत्तम गति (मोक्ष) मे गए।

तम्हा सुयमहिट्ठेज्जा
उत्तमट्ठगावेसए ।
जेणऽप्पाण पर चेव
सिद्धि सपाउणेज्जासि ।।

(उत्त ११ ३२)

उत्तम अर्थ (मोक्ष) की गवेषणा करने वाला मुनि श्रुत का आश्रयण करे, जिससे वह अपने आपको और दूसरो को सिद्धि की प्राप्ति करा सके ।

धम्मे हरए बंभे संतितित्थे
अणाविले अत्तपसन्नलेसे।
जहिंसि ण्हाओ विमलो विसुद्धो
सुसीइभूओ पजहामि दोसं।।

एयं सिणाणं कुसलेहि दिट्ठं
महासिणाणं इसिणं पसत्थं।
जहिंसि ण्हाया विमला विसुद्धा
महारिसी उत्तमं ठाणं पत्त।।
(उत्त १२ ४६, ४७)

मुनि का चिन्तन होता है—"अकलुषित एव आत्मा का प्रसन्न-लेश्या वाला धर्म मेरा ह्रद (जलाशय) है। ब्रह्मचर्य मेरा शान्तितीर्थ है, जहा नहाकर मै विमल, विशुद्ध और सुशीतल होकर कर्म-रज का त्याग करता हू।

यह स्नान कुशल पुरुषो द्वारा दृष्ट है। यह महास्नान है। अत ऋषियो के लिए यही प्रशस्त है। इस धर्म-नद मे नहाए हुए महर्षि विमल और विशुद्ध होकर उत्तम-स्थान (मुक्ति) को प्राप्त हुए।

बालाभिरामेसु दुहावहेसु
न त सुह कामगुणेसुराय ।
विरत्तकामाण तवोधणाण
ज भिक्खुण सीलगुणे रयाण ।।
(उत्त १३ १७)

अज्ञानियो के लिए रमणीय और दु खकर काम-गुणो मे वह सुख नहीं हे, जो सुख कामो से विरक्त, शील और गुण मे रत तपोधन भिक्षु को प्राप्त होता है।

२६२

मणपल्हायजणणि
कामरागविवड्ढणि।
बभचेररओ भिक्खू
थीकह तु विवज्जए।।
(उत्त १६ २)

ब्रह्मचर्य मे रत रहने वाला भिक्षु, मन को आह्लाद देने वाली तथा काम-राग को बढाने वाली स्त्री-कथा का वर्जन करे।

२६३

सम च सथवं थीहि
सकह च अभिक्खण।
बभचेररओ भिक्खू
निच्चसो परिवज्जए।।
(उत्त १६ · ३)

ब्रह्मचर्य मे रत रहने वाला भिक्षु स्त्रियो के साथ परिचय और बार-बार वार्तालाप का सदा वर्जन करे।

२६४

अगपच्चगसठाण
चारुल्लवियपेहिय।
बभचेररओ थीण
चक्खुगिज्झ विवज्जए।।
(उत्त १६ ४)

ब्रह्मचर्य मे रत रहने वाला भिक्षु स्त्रियो के चक्षु-ग्राह्य, अग-प्रत्यग, आकार, बोलने की मनहर मुद्रा और चितवन को न देखे--देखने का यत्न न करे।

२६५

कुइय रुइय गीय
हसिय थणियकदिय।
बमचेररओ थीण
सोयगिज्झ विवज्जए।।
(उत्त १६ ५)

ब्रह्मचर्य मे रत रहने वाला भिक्षु स्त्रियो के श्रोत्रग्राह्य, कूजन, रोदन, गीत, हास्य, गर्जन और क्रन्दन को न सुने—सुनने का यत्न न करे।

२६६

हास किड्ड रइ दप्प
सहसावत्तासियाणि य।
बभचेररओ थीण
नाणुचिते कयाइ वि।।

(उत्त १६ ६)

ब्रह्मचर्य मे रत रहने वाला भिक्षु पूर्व जीवन मे स्त्रियो के साथ अनुभूत हास्य, क्रीडा, रति, अभिमान और आकस्मिक त्रास का कभी भी अनुचितन न करे।

२६७

पणीय भत्तपाण तु
खिप्प मयविवड्ढण।
बभचेररओ भिक्खू
निच्चसो परिवज्जए।।

(उत्त १६ ७)

ब्रह्मचर्य मे रत रहने वाला भिक्षु शीघ्र ही काम-वासना को बढाने वाले प्रणीत भक्त-पान का सदा वर्जन करे।

२६८

धम्मलद्ध मिय काले
    जत्तत्थ पणिहाणव।
नाइमत्त तु भुजेज्जा
    बभचेररओ सया।।

(उत्त १६ ८)

ब्रह्मचर्य-रत और स्वस्थ चित्त वाला भिक्षु जीवन-निर्वाह के लिए उचित समय मे निर्दोष, भिक्षा द्वारा प्राप्त, परिमित भोजन करे, किन्तु मात्रा से अधिक न खाए।

विभूस परिवज्जेज्जा
सरीरपरिमडण।
बभचेररओ भिक्खू
सिगारत्थ न धारए।।
(उत्त १६ ६)

ब्रह्मचर्य मे रत रहने वाला भिक्षु विभूषा का वर्जन करे और शरीर की शोभा बढाने वाले केश, दाढी आदि को शृगार के लिए धारण न करे।

२७०

आलओ थीजणाइण्णो
थीकहा य मणोरमा।
सथवो चेव नारीणं
तासि इदियदरिसण।।

कुइय रुइय गीयं
हसिय भुत्तासियाणि य।
पणीय भत्तपाण च
अइमाय पाणभोयणं।।

गत्तभूसणमिट्ठ च
कामभोगा य दुज्जया।
नरस्सत्तगवेसिस्स
विस तालउडं जहा।।

(उत्त १६ ११—१३)

१ स्त्रियो से आकीर्ण आलय
२ मनोरम स्त्री-कथा,
३ स्त्रियो का परिचय
४ उनके इन्द्रियो को देखना
५ उनके कूजन, रोदन, गीत और हास्य-युक्त शब्दों को सुनना,
६ भुक्त-भोग और सहावस्थान को याद करना
७ प्रणीत पान-भोजन,
८ मात्रा से अधिक पान-भोजन
६ शरीर को सजाने की इच्छा और
१० दुर्जय काम-भोग—ये दस आत्म-गवेषी मनुष्य के लिए तालपुट विष के समान हैं।

२७१

दुज्जए कामभोगे य
निच्चसो परिवज्जए।
सकट्ठाणाणि सव्वाणि
वज्जेज्जा पणिहाणव।।
(उत्त १६ १४)

एकाग्रचित्त वाला मुनि दुर्जय काम-भोगो और ब्रह्मचर्य मे शका उत्पन्न करने वाले पूर्वोक्त सभी स्थानो का वर्जन करे।

२७२

धम्मारामे चरे भिक्खू
धिइम धम्मसारही।
धम्मारामरए दते
बभचरेसमाहिए।।

(उत्त १६ १५)

धैर्यवान, धर्म के रथ को चलाने वाला, धर्म के आराम मे रत, दात और ब्रह्मचर्य मे चित्त का समाधान पाने वाला भिक्षु धर्म के आराम मे विचरण करे।

जे के इमे पव्वइए
निद्दासीले पगामसो।
भोच्चा पेच्चा सुह सुवइ
पावसमणि त्ति वुच्चई।।
आयरियउवज्झाएहि
सुय विणय च गाहिए।
ते चेव खिसई बाले
पावसमणि त्ति वुच्चई।।
आयरियउवज्झायांण
सम्म नो पडितप्पइ।
अप्पीडिपूयए थद्धे
पावसमणि त्ति वुच्चई।।

(उत्त १७ ३-५)

जो प्रव्रजित होकर बार–बार नींद लेता है, खा-पी कर आराम से लेट जाता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है।

जिन आचार्य और उपाध्याय ने श्रुत और विनय सिखाया उन्हीं की निन्दा करता है, वह विवेक-विकल भिक्षु पाप-श्रमण कहलाता है।

जो आचार्य और उपाध्याय के कार्यो की सम्यक् प्रकार से चिन्ता नहीं करता, उनकी सेवा नहीं करता, जो बडो का सम्मान नहीं करता, जो अभिमानी होता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है।

२७४

सम्मद्दमाणे पाणाणि
बीयाणि हरियाणि य।
असजए सजयमन्नमाणे
पावसमणि त्ति वुच्चई।।
सथार फलग पीढ
निसेज्ज पायकबल।
अप्पमज्जियमारुहइ
पावसमणि त्ति वुच्चई।।
दवदवस्स चरई
पमत्ते य अभिक्खण।
उल्लघणे य चडे य
पावसमणि त्ति वुच्चई।।

(उत्त १७ . ६-८)

द्वीन्द्रिय आदि प्राणी तथा बीज और हरियाली का मर्दन करने वाला, असयमी होते हुए भी अपने आपको संयमी मानने वाला, पाप-श्रमण कहलाता है।

जो बिछौने, पाट, पीठ, आसन और पैर पोछने के कम्बल का प्रमार्जन किए बिना (तथा देखे बिना) उन पर बैठता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है।

जो द्रुतगति से चलता है, जो बार-बार प्रमाद करता है, जो प्राणियो को लाघकर उनके ऊपर होकर चला जाता है, जो क्रोधी है, वह पाप-श्रमण कहलाता है।

२७५

पडिलेहेइ पमत्ते
अवउज्झइ पायकबल।
पडिलेहणाअणाउत्ते
पावसमणि त्ति वुच्चई।
पडिलेहेइ पमत्ते
से किचि हु निसामिया।
गुरुपरिभावए निच्च
पावसमणि त्ति वुच्चई।
बहुमाई पमुहरे
थद्धे लुद्धे अणिग्गहे।
असविभागी अचियत्ते
पावसमणि त्ति वुच्चई।

(उत्त १७ . ६-११)

जो असावधानी से प्रतिलेखन करता है, जो पाद-कम्बल को जहा-कहीं रख देता है, इस प्रकार जो प्रतिलेखना में असावधान होता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है।

जो कुछ भी बातचीत हो रही हो उसे सुनकर प्रतिलेखना मे असावधानी करने लगता है, जो गुरु का तिरस्कार करता है, शिक्षा देने पर उनके सामने बोलने लगता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है।

जो बहुत कपटी, वाचाल, अभिमानी, लालची, इन्द्रिय और मन पर नियत्रण न रखने वाला, भक्त-पान आदि का सविभाग न करने वाला और गुरु आदि से प्रेम न रखने वाला होता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है।

विवाद च उदीरेइ
अहम्मे अत्तपण्णहा।
वुग्गहे कलहे रत्ते
पावसमणि त्ति वुच्चई।।
अथिरासणे कुक्कुईए
जत्थ तत्थ निसीयई।
आसणम्मि अणाउत्ते
पावसमणि त्ति वुच्चई।।
दुद्धदहीविगईओ
आहारेइ अभिक्खण।
अरए य तवोकम्मे
पावसमणि त्ति वुच्चई।।

(उत्त १७ १२, ७, १५)

जो शात हुए विवाद को फिर से उभाडता है, जो सदाचार से शून्य होता है, जो (कुतर्क से) अपनी प्रज्ञा का हनन करता है, जो कदाग्रह और कलह मे रत होता है, वह पाप–श्रमण-कहलाता है।

जो स्थिरासन नहीं होता, बिना प्रयोजन इधर-उधर चक्कर लगाता है, जो हाथ, पैर आदि अवयवो को हिलाता रहता है, जो जहा कहीं बैठ जाता है—इस प्रकार आसन (या बैठने) के विषय मे जो असावधान होता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है।

जो दूध, दही आदि विकृतियो का बार-बार आहार करता है और तपस्या मे रत नहीं रहता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है।

अत्थतम्मि य सुरम्मि
आहारेइ अभिक्खणं।
चोइओ पडिचोएइ
पावसमणि त्ति वुच्चई।
सयं गेहं परिचज्ज
परगेहंसि वावडे।
निमित्तेण य ववहरई
पावसमणि त्ति वुच्चई।
सन्नाइपिंडं जेमेइ
नेच्छई सामुदाणियं।
गिहिनिसेज्जं च वाहेइ
पावसमणि त्ति वुच्चई।

(उत्त १७ १६, १८, १९)

जो सूर्य के उदय से लेकर अस्त होने तक बार-बार खाता रहता है। 'ऐसा नहीं करना चाहिए'--इस प्रकार सीख देने वाले को कहता है कि तुम उपदेश देने मे कुशल हो, करने मे नहीं--वह पाप-श्रमण कहलाता है।

जो अपना घर छोडकर (प्रव्रजित होकर) दूसरो के घर मे व्यापृत होता है, उनका कार्य करता है, जो शुभाशुभ बताकर धन का अर्जन करता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है।

जो अपने ज्ञाति--जनो के घर का भोजन करता है, किन्तु सामुदायिक भिक्षा करना नहीं चाहता, जो गृहस्थ की शय्या पर बैठता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है।

एयारिसे पंचकुसीलसवुडे
रूवधरे मुणिपवराण हेड्डिमे।
अयसि लोए विसमेव गरहिए
न से इह नेव परत्थ लोए।।
(उत्त १७ · २०)

जो पूर्वोक्त आचरण करने वाला, पाच प्रकार के कुशील साधुओ की तरह असवृत मुनि के वेश को धारण करने वाला और मुनि-प्रवरो की उपेक्षा तुच्छ सयम वाला होता है, वह इस लोक मे विष की तरह निदित होता है। वह न इस लोक मे कुछ होता है और न परलोक मे।

२७६

जे वज्जए एए सया उ दोसे
से सुव्वए होइ मुणीण मज्झे।
अयसि लोए अमय व पूइए
आराहए दुहओ लोगमिणं।।
(उत्त १७ : २१)

जो इन दोषों का सदा वर्जन करता है, वह मुनियो में सुव्रत होता है। वह इस लोक मे अमृत की तरह पूजित होता है तथा इस लोक और परलोक—दोनो लोको की आराधना करता है।

२८०

सगरो वि सागरत
भरहवास नराहिवो।
इस्सरिय केवल हिच्चा
दयाए परिनिव्वुडे।।

(उत्त १८ ३५)

सगर चक्रवर्ती सागर पर्यन्त भारतवर्ष और पूर्ण ऐश्वर्य को छोड अहिसा की आराधना कर मुक्त हुए।

२८१

कह धीरो अहेऊहि
उम्मत्तो व्व महि चरे ?
एए विसेसमादाय
सूरा दढपरक्कमा।।

(उत्त १८ ५१)

ये भरत आदि शूर और दृढ पराक्रमशाली राजा दूसरे धर्म-शासनो से जैन-शासन मे विशेषता पाकर यहीं प्रव्रजित हुए तो फिर धीर पुरुप एकान्त-दृष्टिमय अहेतुवादो के द्वारा उन्मत्त की तरह कैसे पृथ्वी पर विचरण करे ?

२८२

जहा मिगे एग अणेगचारी
अणेगवासे धुवगोयरे य।
एव मुणी गोयरिय पविट्ठे
नो हीलए नो वि य खिसएज्जा।।
(उत्त १६ ८३)

जिस प्रकार हरिण अकेला अनेक स्थानो से भक्त-पान लेने वाला, अनेक स्थानो मे रहने वाला और गोचर से ही जीवन-यापन करने वाला होता है, उसी प्रकार गोचर-प्रविष्ट मुनि जब भिक्षा के लिए जाता है तब किसी की अवज्ञा और निन्दा नहीं करता।

निग्गंथधम्म लहियाण वी जहा
सीयंति एगे बहुकायरा नरा।।
(उत्त २० : ३८)

जैसे कई व्यक्ति बहुत कायर होते हैं। वे निर्ग्रन्थ-धर्म पाकर भी कष्टानुभव करते हैं—निर्ग्रन्थाचार का पालन करने मे शिथिल हो जाते हैं।

२८४

जो पव्वइत्ताण महव्वयाइ
सम्म नो फासयई पमाया।
अनिग्गहप्पा य रसेसु गिद्धे
न मूलओ छिदइ बधण से।।
(उत्त २० ३९)

जो महाव्रतो को स्वीकार कर भलीभाति उनका पालन नहीं करता, अपनी आत्मा का निग्रह नहीं करता, रसो मे मूर्च्छित होता है, वह बन्धन का मूलोच्छेद नहीं कर पाता।

२८५

आउत्तया जस्स न अत्थि काइ
इरियाए भासाए तहेसणाए।
आयाणनिक्खेवदुगुछणाए
न वीरजाय अणुजाइ मग्ग॥

चिर पि से मुडरुई भवित्ता
अथिरव्वए तवनियमेहि भट्ठे।
चिर पि अप्पाण किलेसइत्ता
न पारए होइ हु सपराए॥
(उत्त २० ४०, ४१)

ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेप और उच्चार-प्रस्रवण की परिस्थापना मे जो सावधानी नहीं वर्तता, वह उस मार्ग का अनुगमन नहीं कर सकता जिस पर वीर पुरुष चले हैं।

जो व्रतो मे स्थिर नहीं है, तप और नियमो से भ्रष्ट हे, वह चिरकाल से मुण्डन मे रुचि रखकर भी ओर चिरकाल तक आत्मा को कष्ट देकर भी ससार का पार नहीं पा सकता।

२८६

कुसीललिंग इह धारइत्ता
इसिज्झयं जीविय वूहइत्ता।
असंजए सजयलप्पमाणे
विणिघायमागच्छइ से चिरं पि।।
(उत्त. २० : ४३)

जो कुशील-वेश और ऋषि-ध्वज (रजोहरण आदि मुनि चिन्हो) को धारण कर उनके द्वारा जीविका चलाता है, असयत होते हुए भी अपने आपको सयत कहता है, वह चिरकाल तक विनाश को प्राप्त करता है।

२८७

तमतमेणेव उ से असीले
सया दुही विप्परियासुवेइ।
सधावई नरगतिरिक्खजोणिं
मोण विराहेत्तु असाहुरूवे।।
(उत्त २० . ४६)

वह शील-रहित साधु अपने तीव्र अज्ञान से सतत दु खी होकर विपर्यास को प्राप्त हो जाता हे। वह असाधु-प्रकृति वाला मुनि धर्म की विराधना कर नरक ओर तिर्यग्‌योनि मे आता-जाता रहता है।

उद्देसिय कीयगड नियाग
न मुचई किंचि अणेसणिज्ज।
अग्गी विवा सव्वभक्खी भवित्ता
इओ चुओ गच्छइ कट्टु पाव।।
(उत्त २० ४७)

जो ओद्देशिक, क्रीतकृत, नित्याग्र और कुछ भी अनेषणीय को नहीं छोडता, वह अग्नि की तरह सर्वभक्षी होकर, पाप-कर्म का अर्जन करता है और यहा से मरकर दुर्गति मे जाता है।

निरट्ठिया नग्गरुई उ तस्स
 जे उत्तमट्ठ विवज्जासमेई।
इमे वि से नत्थि परे वि लोए
 दुहओ वि से झिज्जइ तत्थ लोए।।
(उत्त २० ४६)

जो अन्तिम समय की आराधना मे भी विपरीत बुद्धि रखता है, दुष्प्रवृत्ति को सत्प्रवृत्ति मानता हे उसकी सयम-रुचि भी निरर्थक है। उसके लिए यह लोक भी नहीं हे, परलोक भी नहीं है। वह दोनो लोको से भ्रष्ट होकर दोनो लोको के प्रयोजन की पूर्ति न कर सकने के कारण चिन्ता से छीज जाता हे।

सोच्चाण मेहावि सुभासिय इमं
अणुसासणं नाणगुणोववेय।
मग्गं कुसीलाण जहाय सव्वं
महानियंठाण वए पहेणं।
(उत्त. २० : ५१)

मेधावी पुरुष इस सुभाषित, ज्ञान-गुण से युक्त अनुशासन को सुनकर, कुशील व्यक्तियों के सारे मार्ग को छोडकर महानिर्ग्रन्थ के मार्ग से चले।

२६१

अह अन्नया कयाई
पासायालोयणे ठिओ।
वज्झमण्डणसोभाग
वज्झ पासइ वज्झग।।

तं पासिऊण संविग्गो
समुद्दपालो इणमब्बवी।
अहोसुभाण कम्माणं
निज्जाणं पावगं इमं।।

(उत्त. २१ : ८, ९)

समुद्रपाल कभी एक बार प्रासाद के झरोखे मे बैठा हुआ था। उसने वध्य-जनोचित मण्डनों से शोभित वध्य को नगर से वाहर ले जाते हुए देखा।

उसे देख वैराग्य में भीगा हुआ समुद्रपाल यों बोला—"अहो! यह अशुभ कर्मों का दु खद निर्याण—अवसान है।"

२६२

सबुद्धो सो तहि भगव
पर सवेगमागओ।
आपुच्छऽम्मापियरो
पव्वए अणगारिय।।

दुविह खवेऊण य पुण्णपाव
निरगणे सव्वओ विप्पमुक्के।
तरित्ता समुद्द व महाभवोघ
समुद्दपाले अपुणागम गए।।
(उत्त २१ १०, २४)

समुद्रपाल भगवान् परम वैराग्य को प्राप्त हुआ ओर सबुद्ध बन गया। उसने माता-पिता को पूछकर साधुत्व स्वीकार किया।

समुद्रपाल सयम मे निश्चल और सर्वत मुक्त होकर पुण्य और पाप दोनो को क्षीण कर तथा विशाल ससार-प्रवाह को समुद्र की भाति तरकर अपुनरागम गति (मोक्ष) मे गया।

२६३

रहनेमी अहं भद्दे
सुरूवे ! चारुभासिणि !
मम भयाहि सुयणू !
न ते पीला भविस्सई।।

एहि ता भुंजिमो भोए
माणुस्सं खु सुदुल्लहं।
भुत्तभोगा तओ पच्छा
जिणमग्ग चरिस्सिमो।।

(उत्त २२ ३७, ३८)

काम-विह्वल रथनेमि ने राजीमती से कहा—"भद्रे ! मैं रथनेमि हू। सुरूपे ! चारुभाषिणि ! तू मुझे स्वीकार कर। सुतनु ! तुझे कोई पीडा नहीं होगी।"

आ, हम भोग भोगे। निश्चित ही मनुष्य जीवन वहुत दुर्लभ है। मुक्त-भोगी हो, फिर हम जिन-मार्ग पर चलेगे।

जइ सि रूवेण वेसमणो
ललिएण नलकूबरो।
तहा वि ते न इच्छामि
जइ सि सक्ख पुरदरो।।
अह च भोयरायस्स
त च सि अधगवण्हिणो।
मा कुले गधणा होमो
सजम निहुओ चर।।
जइ त काहिसि भाव
जा जा दिच्छसि नारिओ।
वायाविद्धो व्व हढो
अट्ठिअप्पा भविस्ससि।।

(उत्त २२ ४१, ४३, ४४)

नियम और व्रत मे सुस्थिर राजवरकन्या राजीमती ने जाति, कुल और शील की रक्षा करते हुए रथनेमि से कहा—यदि तू रूप से वैश्रमण है, लालित्य से नलकूबर है और तो क्या, यदि तू साक्षात् इन्द्र है तो भी मैं तुझे नहीं चाहती।

मैं भोजराज की पुत्री हू और तू अन्धकवृष्णि का पुत्र। हम कुल मे गन्धन सर्प की तरह न हो। तू निभृत हो—स्थिर मन हो—सयम का पालन कर।

यदि तू स्त्रियो को देख उनके प्रति इस प्रकार राग-भाव करेगा तो वायु से आहत हट (जलीय वनस्पति-काई) की तरह अस्थितात्मा हो जाएगा।

तीसे सो वयण सोच्चा
सजयाए सुभासिय।
अकुसेण जहा नागो
धम्मे सपडिवाइओ।।
मणगुत्तो वयगुत्तो
कायगुत्तो जिइदिओ।
सामण्ण निच्चल फासे
जावज्जीव दढव्वओ।।
एव करेति सबुद्धा
पंडिया पवियक्खणा।
विणियट्टति भोगेसु
जहा सो पुरिसोत्तमो।।
(उत्त २२ ४६, ४७, ४९)

सयमिनी राजीमती के वचनो को सुनकर रथनेमि धर्म मे वैसे ही स्थिर हो गया जैसे अकुश से हाथी होता है।

वह मन, वचन और काया से गुप्त, जितेन्द्रिय तथा दृढव्रती हो गया। उसने फिर आजीवन निश्चल भाव से श्रामण्य का पालन किया। सम्बुद्ध, पण्डित और प्रविचक्षण पुरुष ऐसा ही करते हैं—वे भोगो से वैसे ही दूर हो जाते हैं, जैसे पुरुषोत्तम रथनेमि हुआ।

२६६

पण्णा समिक्खए धम्म
तत्त तत्तविणिच्छय।।
(उत्त २३ २५)

धर्म, तत्त्व और तत्त्व-विनिश्चय की समीक्षा प्रज्ञा से होती है।

पच्चयत्थ च लोगस्स
नाणाविहविगप्पण।
जत्तत्थ गहणत्थ च
लोगे लिगप्पओयण।।
अह भवे पइण्णा उ
मोक्खसब्भूयसाहणे।
नाण च दसण चेव
चरित्त चेव निच्छए।।
(उत्त २३ · ३२, ३३)

लोगो को यह प्रतीति हो कि ये साधु हैं, इसलिए नाना प्रकार के उपकरणो की परिकल्पना की गई है। जीवन-यात्रा को निमाना और "मैं साधु हू" ऐसा ध्यान आते रहना—वेप-धारण के इस लोक में ये प्रयोजन हैं।

यदि मोक्ष के वास्तविक साधन की प्रतिज्ञा हो तो निश्चय-दृष्टि मे उसके साधन ज्ञान, दर्शन और चारित्र ही हैं।

रागद्दोसादओ तिव्वा
नेहपासा भयकरा।
ते छिंदित्तु जहानाय
विहरामि जहक्कम।।

(उत्त. २३ : ४३)

प्रगाढ राग-द्वेष और स्नेह भयकर पाश हैं। मैं उन्हें यथाज्ञात उपाय के अनुसार छिन्न कर मुनि-आचार के साथ विहरण करता हूं।

निव्वाणं ति अबाहं ति
सिद्धी लोगग्गमेव य।
खेमं सिवं अणाबाहं
ज चरंति महेसिणो।।
तं ठाणं सासयं वासं
लोगग्गंमि दुरारुह।
ज संपत्ता न सोयंति
भवोहंतकरा मुणी।।
(उत्त २३ ८३, ८४)

जो निर्वाण है, जो अबाध, सिद्धि, लोकाग्र, क्षेम, शिव और अनाबाध है, जिसे महान् की एषणा करने वाले प्राप्त करते हैं।

भव-प्रवाह का अन्त करने वाले मुनि जिसे प्राप्त कर शोक से मुक्त हो जाते हैं, जो लोक के शिखर मे शाश्वत-रूप से अवस्थित है, जहा पहुच पाना कठिन है, उसे मैं स्थान कहता हू।

३००

आलबणेण कालेण
मग्गेण जयगाइ य।
चउकारणपरिसुद्धं
सजए इरिय रिए।।
तत्थ आलबणं नाण
दंसण चरण तहा।
काले य दिवसे वुत्ते
मग्गे उप्पहवज्जिए।।
दव्वओ चक्खुसा पेहे
जुगमित्त च खेत्तओ।
कालओ जाव रीएज्जा
उवउत्ते य भावओ।।

(उत्त २४ ४, ५, ७)

सयमी मुनि आलम्बन, काल मार्ग और यतना—इन चार कारणो से परिशुद्ध ईर्या (गति) से चले।

उनमे ईर्या का आलम्बन ज्ञान, दर्शन और चारित्र है। उसका काल दिवस है और उत्पथ का वर्जन करना उसका मार्ग है।

द्रव्य से—आखो से देखे। क्षेत्र से—युग-मात्र (गाडी के जुए जितनी) भूमि को देखे। काल से—जब तक चले तब तक देखे। भाव से—उपयुक्त (गमन से दत्तचित्त) रहे।

३०१

इंदियत्थे विवज्जित्ता
सज्झायं चेव पचहा।
तम्मुत्ती तप्पुरक्कारे
उवउत्ते इरियं रिए।।

(उत्त २४ ८)

मुनि इन्द्रियो के विषयो और पांच प्रकार के स्वाध्याय का वर्जन कर, ईर्या मे तन्मय हो, उसे प्रमुख बना उपयोगपूर्वक चले।

३०२

कोहे माणे य मायाए
लोभे य उवउत्तया।
हासे भए मोहरिए
विगहासु तहेव च।।

एयाइ अट्ठ ठाणाइं
परिवज्जित्तु संजए।
आसावज्ज मियं काले
भासं भासेज्ज पन्नव।।

(उत्त. २४ . ९, १०)

मुनि क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, भय, वाचालता और विकथा के प्रति सावधान रहे—इनका प्रयोग न करे।

प्रज्ञावान् मुनि इन आठ स्थानों का वर्जन कर यथासमय निरवद्य और परिमित वचन बोले।

३०३

गवेसणाए गहणे य
परिभोगेसणा य जा।
आहारोवहिसेज्जाए
एए तिन्नि विसोहए।।

उग्गमुप्पायण पढमे
बीए सोहेज्ज एसण।
परिभोयमि चउक्कं
विसोहेज्ज जयं जई।।
(उत्त. २४ : ११, १२)

आहार, उपधि और शय्या के विषय मे गवेषणा, ग्रहणैषणा और परिभोगैषणा--इन तीनो का विशोधन करे।

यतनाशील यति प्रथम एषणा (गवेषणा-एषणा) में उद्‌गम और उत्पादन दोनों का शोधन करे। दूसरी एषणा (ग्रहण-एषणा) में एषणा (ग्रहण) सम्बन्धी दोषो का शोधन करे और परिभोगैषणा में दोष-चतुष्क (सयोजना, अप्रमाण, अंगार-धूम और कारण) का शोधन करे।

३०४

ओहोवहोवग्गहिय
भडग दुविह मुणी।
गिण्हतो निक्खिवतो य
पउजेज्ज इम विहि।।
चक्खुसा पडिलेहित्ता
पमज्जेज्ज जय जई।
आइए निक्खिवेज्जा वा
दुहओ वि समिए सया।।
उच्चार पासवण
खेल सिघाणजल्लिय।
आहार उवहिं देह
अन्न वावि तहाविह।।

(उत्त २४ : १३-१५)

मुनि ओघ-उपाधि (सामान्य उपकरण) और औपग्रहिक-उपाधि (विशेष उपकरण) दोनो प्रकार के उपकरणो को लेने और रखने मे इस विधि का प्रयोग करे—

सदा सम्यक्–वृत्त यति दोनो प्रकार के उपकरणो का चक्षु से प्रतिलेखन कर तथा रजोहरण आदि से प्रमार्जन कर सयमपूर्वक उन्हे ले और रखे।

उच्चार, प्रस्रवण, श्लेष्म, नाक का मैल, मैल, आहार, उपधि, शरीर या उसी प्रकार की दूसरी कोई उत्सर्ग करने योग्य वस्तु का उपयुक्त स्थण्डिल मे उत्सर्ग करे।

सच्चा तहेव मोसा य
सच्चामोसा तहेव य।
चउत्थी असच्चमोसा
मणगुत्ती चउव्विहा।।
सरंभसमारभे
आरभे य तहेव य।
मण पवत्तमाण तु
नियत्तेज्ज जय जई।।
(उत्त २४ २०, २१)

सत्या, मृषा, सत्यामृषा और चौथी असत्यामृषा—इस प्रकार मनो-गुप्ति के चार प्रकार हैं—

यति सरम्भ, समारम्भ और आरम्भ मे प्रवर्तमान मन का सयमपूर्वक निवर्तन करे।

३०६

सच्चा तहेव मोसा य
सच्चामोसा तहेव य।
चउत्थी असच्चमोसा
वइगुत्ती चउव्विहा।।
सरंभसमारभे
आरभे य तहेव य।
वय पवत्तमाण तु
नियत्तेज्ज जय जई।।
संरंभमारभे
आरंभम्मि तहेव य।
काय पवत्तमाण तु
नियत्तेज्ज जयं जई।।
(उत्त २४ : २२, २३, २५)

सत्या, मृषा, सत्यामृषा और चौथी असत्यामृषा—इस प्रकार वचन-गुप्ति के चार प्रकार हैं—

यति संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ मे प्रवर्तमान वचन का संयमपूर्वक निवर्तन करे।

सरंम्भ, समारम्भ और आरम्भ मे प्रवर्तमान काया का यति संयमपूर्वक निवर्तन करे।

एयाओ पच एमिईओ
चरणस्स य पवत्तणे।
गुत्ती नियत्तणे वुत्ता
असुभत्थेसु सव्वसो।।
एया पवयणमाया
जे सम्म आयरे मुणी।
से खिप्पं सव्वसंसारा
विप्पमुच्चई पंडिए।।
(उत्त. २४ : २६, २७)

पांच समितियां चरित्र की प्रवृत्ति के लिए हैं और तीन गुप्तियां सब अशुभ विषयो से निवृत्ति करने के लिए हैं।

जो पण्डित मुनि इन प्रवचन-माताओं का सम्यक् आचरण करता है, वह शीघ्र ही भव-परंपरा से मुक्त हो जाता है।

३०८

गमणे आवस्सिय कुज्जा
ठाणे कुज्जा निसीहिय।
आपुच्छणा सयकरणे
परकरणे पडिपुच्छणा।।
छदणा दव्वजाएण
इच्छाकारो य सारणे।
मिच्छाकारो य निदाए
तहक्कारो य पडिस्सुए।।
अब्भुट्ठाण गुरुपूया
अच्छणे उवसपदा।
एव दुपचसजुत्ता
सामायारी पवेइया।।

(उत्त २६ ५-७)

(१) मुनि स्थान से बाहर जाते समय आवश्यकी करे—आवश्यकी का उच्चारण करे।

(२) स्थान मे प्रवेश करते समय नैषेधिकी करे—नैषेधिकी का उच्चारण करे।

(३) अपना कार्य करने से पूर्व आपृच्छा करे—गुरु से अनुमति ले।

(४) एक कार्य से दूसरा कार्य करते समय प्रतिपृच्छा करे—गुरु से पुन अनुमति ले।

(५) पूर्व-गृहीत द्रव्यो से छदना करे—गुरु आदि को निमन्त्रित करे।

(६) सारणा (औचित्य से कार्य करने और कराने) में इच्छाकार का प्रयोग करे—आपकी इच्छा हो तो मैं आपका अमुक कार्य करू। आपकी इच्छा हो तो कृपया मेरा अमुक कार्य करे।

(७) अनाचरित की निन्दा के लिए मिथ्याकार का प्रयोग करे।

(८) प्रतिश्रवण (गुरु द्वारा प्राप्त उपदेश की स्वीकृति) के लिए तथाकार (यह ऐसे ही है) का प्रयोग करे।

(६) गुरु-पूजा (आचार्य, ग्लान, बाल आदि साधुओ) के लिए अभ्युत्थान करे—आहार आदि लाए।

(१०) दूसरे गण के आचार्य आदि के पास रहने के लिए उपसम्पदा ले—मर्यादित काल तक उनका शिष्यत्व स्वीकार करे। इस प्रकार दस, विध सामाचारी का निरूपण किया गया है।

पुव्विल्लमि चउब्भाए
आइच्चमि समुट्ठिए।
भडय पडिलेहित्ता
वदित्ता य तओ गुरु।।
पुच्छेज्जा पजलिउडो
कि कायव्व मए इह?।
इच्छ निओइउ भते!
वेयावच्चे य सज्झाए।।
वेयावच्चे निउत्तेण
कायव्व अगिलायओ।
सज्झाए वा निउत्तेण
सव्वदुक्खविमोक्खणे।।
(उत्त २६ ८-१०)

सूर्य के उदय होने पर दिन के प्रथम प्रहर के प्रथम चतुर्थ भाग मे भाण्ड-उपकरणो की प्रतिलेखना करे। तदनन्तर गुरु की वन्दना कर—हाथ जोडकर पूछे—अब मुझे क्या करना चाहिए? भन्ते! मैं चाहता हू कि आप मुझे वैयावृत्त्य या स्वाध्याय मे से किसी एक कार्य मे नियुक्त करे। गुरु द्वारा वैयावृत्त्य मे नियुक्त किए जाने पर अग्लान भाव से वैयावृत्त्य करे अथवा सर्वदु खो से मुक्त करने वाले स्वाध्याय में नियुक्त किए जाने पर अग्लान भाव से स्वाध्याय करे।

दिवसस्स चउरो भागे
कुज्जा भिक्खू वियक्खणो।
तओ उत्तरगुणे कुज्जा
दिणभागेसु चउसु वि।।
पढमं पोरिसि सज्झाय
बीय झाण झियायई।
तइयाए भिक्खायरिय
पुणो चउत्थीए सज्झाय।।
(उत्त. २६ ११, १२)

विचक्षण भिक्षु दिन के चार भाग करे। उन चारो भागो मे उत्तर-गुणों (स्वाध्याय आदि) की आराधना करे।

प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय और दूसरे मे ध्यान करे, तीसरे मे भिक्षाचरी और चौथे मे पुन स्वाध्याय करे।

३११

रत्ति पि चउरो भागे
भिक्खू कुज्जा वियक्खणो।
तओ उत्तरगुणे कुज्जा
राइभाएसु चउसु वि।।
पढम पोरिसि सज्झाय
बीय झाण झियायई।
तइयाए निद्दमोक्ख तु
चउत्थी भुज्जो वि सज्झाय।।
(उत्त २६ १७, १८)

विचक्षण भिक्षु रात्रि के भी चार भाग करे। इन चारो भागो मे उत्तर-गुणो की आराधना करे।

प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय, दूसरे मे ध्यान, तीसरे मे नींद और चौथे मे पुन स्वाध्याय करे।

३१२

अणच्चाविय अवलिय
    अणाणुबधि अमोसलि चेव।
छप्पुरिमा नव खोडा
    पाणीपाणविसोहण।।
पडिलेहण कुणतो
    मिहोकह कुणइ जणवयकह वा।
देइ व पच्चक्खाण
    वाएइ सय पडिच्छइ वा।।
पुढवीआउक्काए
    तेऊवाऊवणस्सइतसाण।
पडिलेहणापमत्तो
    छण्ह पि विराहओ होइ।।
(पुढवीआउक्काए
    तेऊवाऊवणस्सइतसाण।
पडिलेहणआउत्तो
    छण्ह आराहओ होइ।।)

(उत्त २६ २५, २६, ३०)

प्रतिलेखना करते समय वस्त्र या शरीर को न नचाए, न मोडे, वस्त्र के दृष्टि से अलक्षित विभाग न करे, वस्त्र का

भीत आदि से स्पर्श न करे, वस्त्र के छह पूर्व और नौ खटक करे और जो कोई प्राणी हो, उसका हाथ पर नौ बार विशोधन (प्रमार्जन) करे।

जो प्रतिलेखना करते समय काम-कथा करता है अथवा जन पद की कथा करता है अथवा प्रत्याख्यान कराता है, दूसरो को पढाता है अथवा स्वय पढता है--वह प्रतिलेखना मे प्रमत्त मुनि पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय--इन छहो कायो का विराधक होता है।

(प्रतिलेखना मे अप्रमत्त मुनि पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय--इन छहो कायो का आराधक होता है।)

३१३

तइयाए पोरिसीए
भत्त पाण गवेसए।
छण्ह अन्नयरागम्मि
कारणमि समुट्ठिए।।
वेयणवेयावच्चे
इरियट्ठाए य सजमट्ठाए।
तह पाणवत्तियाए
छट्ठ पुण धम्मचिताए।।
(उत्त २६ ३१, ३२)

छह कारणो मे से किसी एक के उपस्थित होने पर तीसरे प्रहर मे भक्त और पान की गवेषणा करे।

वेदना (क्षुधा) शाति के लिए, वैयावृत्त्य के लिए, ईर्यासमिति के शोधन के लिए, सयम के लिए तथा प्राण-प्रत्यय (जीवित रहने) के लिए ओर धर्म-चितन के लिए भक्त-पान की गवेषणा करे।

३१४

निग्गथो धिइमतो
　　निग्गथो वि न करेज्ज छहि चेव।
ठाणहि उ इमेहि।
　　अणइक्कमणा य से होइ।।
आयके उवसग्गे
　　तितिक्खया बमचेरगुत्तीसु।
पाणिदया तवहेउ
　　सरीरवोच्छेयणट्ठाए।।
(उत्त २६ ३३, ३४)

धृतिमान् साधु और साध्वी इन छह कारणो से भक्त-पान की गवेषणा न करे, जिससे उनके सयम का अतिक्रमण न हो। रोग होने पर, उपसर्ग आने पर, ब्रह्मचर्य गुप्ति की तितिक्षा (सुरक्षा) के लिए, प्राणियो की दया के लिए, तप के लिए और शरीर-विच्छेद के लिए मुनि भक्त-पान की गवेषणा न करे।

३१५

वहणे वहमाणस्स
कतार अइवत्तई।
जोए वहमाणस्स
ससारो अइवत्तई।।
(उत्त २७ २)

वाहन को वहन करते हुए बैल का अरण्य स्वय उल्लंघित हो जाता है। वेसे ही योग को वहन करते हुए मुनि का ससार स्वय उल्लघित हो जाता है।

३१६

खलुका जारिसा जोज्जा
दुस्सीसा वि हु तारिसा।
जोइया धम्मजाणम्मि
भज्जति धिइदुब्बला।।
(उत्त २७ ८)

जुते हुए अयोग्य बैल जैसे वाहन को भग्न कर देते हैं, वैसे ही दुर्बल धृति वाले शिष्यो को धर्म-यान मे जोत दिया जाता है तो वे उसे भग्न कर डालते है।

३१७

तवो या दुविहो वुत्तो
बाहिरब्मतरो तहा।
बाहिरो छव्विहो वुत्तो
एवमब्मतरो तवो।।
नाणेण जाणई भावे
दसणेण य सद्दहे।
चरित्तेण निगिण्हाइ
तवेण परिसुज्झई।।
खवेत्ता पुव्वकम्माइ
सजमेण तवेण य।
सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा
पक्कमति महेसिणो।।

(उत्त २८ ३४-३६)

तप दो प्रकार का कहा है—बाह्य और आभ्यतर। बाह्य-तप छह प्रकार का कहा है। इसी प्रकार आभ्यतर-तप भी छह प्रकार का है।

जीव, ज्ञान से पदार्थो को जानता है, दर्शन से श्रद्धा करता है, चारित्र से निग्रह करता है और तप से शुद्ध होता है।

सर्वदु खो से मुक्ति पाने का लक्ष्य रखने वाले महर्षि सयम और तप के द्वारा पूर्व कर्मो का क्षय कर सिद्धि को प्राप्त होते हैं।

३१८

पचसमिओ तिगुत्तो
अकसाओ जिइदिओ।
अगारवो य निस्सल्लो
जीवो होइ अणासवो।।

(उत्त ३० · ३)

पाच समितियो से समित, तीन गुप्तियों से गुप्त, अकषाय, जितेन्द्रिय, अगौरव (गर्व रहित) और नि शल्य जीव अनाश्रव होता है।

३१६

एय तव तु दुविह
 जे सम्म आये मुणी
से खिप्प सव्वससारा
 विप्पमुच्चइ पंडिए।।

(उत्त ३० · ३७)

जो पडित मुनि दोनो प्रकार के बाह्य और आम्यन्तर तपो का सम्यक् रूप से आचरण करता है, वह शीघ्र ही समस्त ससार से मुक्त हो जाता है।

३२०

इत्थी वा पुरिसो वा
अलंकिओ वाणलंकिओ वा वि।
अन्नयरवयत्थो वा
अन्नयरेण व वत्थेण।।
अन्नेण विसेसेण
वण्णेण भावमणुमुयते उ।
एवं चरमाणो खलु
भावोमाणं मुणेयव्वो।।
(उत्त ३० : २२, २३)

स्त्री और पुरुष, अलंकृत अथवा अनलंकृत, अमुक वय वाले, अमुक वस्त्र वाले, अमुक विशेष प्रकार की दशा, वर्ण या भाव से युक्त दाता से भिक्षा ग्रहण करूंगा—अन्यथा नहीं—इस प्रकार चर्या करने वाले मुनि के भाव से अवमौदर्य तप होता है।

३२१

अट्टरुद्दाणि वज्जित्ता
झाएज्झा सुसमाहिए।
धम्मसुक्काइ झाणाइ
झाण त तु बुहा वए।।
(उत्त ३० ३५)

सुसमाहित मुनि आर्त्त ओर रौद्र-ध्यान को छोडकर धर्म और शुक्ल ध्यान का अभ्यास करे। बुध-जन उसे ध्यान कहते हैं।

३२२

रागदोसे य दो पावे
पावकम्मपवत्तणे।
जे भिक्खू रुभई निच्च
से न अच्छइ मडले।।

(उत्त ३१ ३)

राग और द्वेष—ये दो पाप पाप-कर्म के प्रवर्तक हैं। जो भिक्षु सदा इनका निरोध करता है, वह ससार मे नहीं रहता।

३२३

दडाण गारवाण च
सल्लाण च तिय तिय।
जे भिक्खू चयई निच्च
से न अच्छइ मडले।।
(उत्त ३१ · ४)

जो भिक्षु तीन-तीन दण्डो, गौरवो और शल्यो का सदा त्याग करता है, वह ससार मे नहीं रहता।

३२४

दिव्वे य जे उवसग्गे
तहा तेरिच्छमाणुसे।
जे भिक्खू सहई निच्चं
से न अच्छइ मंडले।।
(उत्त ३१ ५)

जो भिक्षु देव, तिर्यञ्च और मनुष्य सम्बन्धी उपसर्गो को सदा सहता है, वह संसार मे नहीं रहता।

३२५

विगहाकसायसन्नाणं
झाणाण च दुय तहा।
जे भिक्खू वज्जई निच्च
से न अच्छइ मडले।।
(उत्त ३१ ६)

जो भिक्षु विकथाओ, कषायो, सज्ञाओ तथा आर्त्त और रौद्र—इन दो ध्यानो का सदा वर्जन करता है, वह ससार मे नहीं रहता।

३२६

वएसु इदियत्थेसु
समिईसु किरियासु य।
जे भिक्खू जयई निच्च
से न अच्छइ मडले।।

(उत्त ३१ ७)

जो भिक्षु व्रतो और समितियो के पालन मे, इन्द्रिय-विषयो और क्रियाओ के परिहार मे, सदा यत्न करता है, वह ससार मे नहीं रहता।

३२७

लेसासु छसु काएसु
छक्के आहारकारणे।
जे भिक्खू जयई निच्चं
से न अच्छइ मडले।।

(उत्त ३१ ८)

जो भिक्षु छह लेश्याओ, छह कायो और आहार के (विधि-निषेध के) छह कारणो मे सदा यत्न करता है, वह ससार मे नहीं रहता।

३२८

मयेसु बभगुत्तीसु
भिक्खुधम्ममि दसविहे।
जे भिक्खू जयई निच्च
से न अच्छइ मडले।।
(उत्त ३१ १०)

जो भिक्षु आठ मद-स्थानो मे, ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियो मे और दस प्रकार के भिक्षु-धर्म मे सदा यत्न करता है, वह ससार मे नहीं रहता।

३२६

एगवीसाए सबलेसु
बावीसाए परीसहे।
जे भिक्खू जयई निच्च
से न अच्छइ मडले।।

(उत्त ३१ १५)

जो भिक्षु इक्कीस प्रकार के शबल-दोषो और बाईस परीषहो मे सदा यत्न करता है, वह ससार मे नहीं रहता।

३३०

आहारमिच्छे मियमेसणिज्ज
सहायमिच्छे निउणत्थबुद्धि।
निकेयमिच्छेज्ज विवेगजोग्ग
समाहिकामे समणे तवस्सी।।
(उत्त ३२ ४)

समाधि चाहने वाला तपस्वी श्रमण परिमित और एषणीय आहार की इच्छा करे। जीव आदि पदार्थ के प्रति निपुण बुद्धि वाले गीतार्थ को सहायक बनाए और विविक्त-एकान्त घर मे रहे।

३३१

न वा लभेज्जा निउण सहाय
गुणाहिय वा गुणओ सम वा।
एक्को वि पावाइ विवज्जयतो
विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो।।
(उत्त ३२ ५)

यदि अपने से अधिक गुणवान् या अपने समान निपुण सहायक न मिले तो वह मुनि पापो का वर्जन करता हुआ, विषयो मे अनासक्त रहकर अकेला ही विहार करे।

३३२

जहा बिरालावसहस्स मूले
न मूसगाण वसही पसत्था।
एमेव इत्थीनिलयस्स मज्झे
न बभयारिस्स खमो निवासो।।
(उत्त ३२ . १३)

जैसे बिल्ली की बस्ती के पास चूहो का रहना अच्छा नहीं होता, उसी प्रकार स्त्रियो की बस्ती के पास ब्रह्मचारी का रहना अच्छा नहीं होता।

३३३

न रूवलावण्णविलासहास
न जपिय इगियपेहिय वा।
इत्थीण चित्तंसि निवेसइत्ता
दट्ठुं ववस्से समणे तवस्सी।।
(उत्त ३२ · १४)

तपस्वी श्रमण, स्त्रियो के रूप, लावण्य, विलास, हास्य, मधुर आलाप, इगित और चितवन को चित्त मे रमा कर उन्हे देखने का सकल्प न करे।

३३४

काम तु देवीहि विभूसियाहि
न चाइया खोभइउ तिगुत्ता।
तहा वि एगतहिय ति नच्चा
विवित्तवासो मुणिण पसत्थो।।
(उत्त ३२ १६)

यह ठीक है कि तीन गुप्तियो से गुप्त मुनियो को विभूषित देवियां भी विचलित नहीं कर सकतीं, फिर भी भगवान् ने एकान्त हित की दृष्टि से उनके विविक्त-वास को प्रशप्त कहा है।

३३५

जे इंदियाण विसया मणुण्णा
न तेसु भावं निसिरे कयाइ।
न यामणुण्णेसु मण पि कुज्जा
समाहिकामे समणे तवस्सी।।
(उत्त ३२ २१)

समाधि चाहनेवाला तपस्वी श्रमण इन्द्रियो के जो मनोज्ञ विषय हैं उनकी ओर भी मन न करे, राग न करे और जो अमनोज्ञ विषय हैं उनकी ओर भी मन न करे, द्वेष न करे।

३३६

एगतरत्ते रुइरसि रूवे
अतालिसे से कुणई पओस।
दुक्खस्स सपीलमुवेइ बाले
न लिप्पई तेण मुणी विरागो।।
(उत्त ३२ २६)

जो मनोहर रूप मे एकान्त अनुरक्त होता है और अमनोहर रूप में द्वेष करता है, वह अज्ञानी दु खात्मक पीड़ा को प्राप्त होता है। इसलिए विरक्त मुनि उनमें लिप्त नहीं होता।

३३७

एगतरत्ते रुइरसि सद्दे
अतालिसे से कुणई पओस।
दुक्खस्स सपीलमुवेई बाले
न लिप्पई तेण मुणी विरागो।।
(उत्त ३२ ३६)

जो मनोहर शब्द में एकान्त अनुरक्त होता है और अमनोहर शब्द में द्वेष करता है, वह अज्ञानी दुःखात्मक पीडा को प्राप्त होता है। इसलिए विरक्त मुनि उनमें लिप्त नहीं होता।

३३८

सद्देविरत्तो मणुओ विसोगो
एएण दुक्खोहपरपरेण।
न लिप्पए भवमज्झे वि सतो
जलेण वा पोक्खरिणीपलास।।
(उत्त ३२ ४७)

शब्द से विरक्त मनुष्य शोकमुक्त बन जाता है। जैसे कमलिनी का पत्र जल मे लिप्त नहीं होता, वैसे ही वह ससार मे रह कर अनेक दु खो की परपरा से लिप्त नही होता।

३३६

एगतरत्ते रुइरसि गधे
अतालिसे से कुणई पओस।
दुक्खस्स सपीलमुवेइ बाले
न लिप्पई तेण मुणी विरागो।।
(उत्त ३२ ५२)

जो मनोहर गन्ध मे एकान्त अनुरक्त होता है और अमनोहर गध मे द्वेष करता है, वह अज्ञानी दु खात्मक पीडा को प्राप्त होता है। इसलिए विरक्त मुनि उनमे लिप्त नहीं होता।

३४०

गंधे विरत्तो मणुओ विसोगो
एएण दुक्खोहपरंपरेण।
न लिप्पई भवमज्झे वि संतो
जलेण वा पोक्खरिणीपलास।।
(उत्त. ३२ · ६०)

गध से विरक्त मनुष्य शोकमुक्त बन जाता है। जैसे कमलिनी का पत्र जल मे लिप्त नहीं होता, वैसे ही वह ससार मे रहकर अनेक दु खो की परपरा से लिप्त नहीं होता।

३४१

एगतरत्ते रुइरसि रसम्मि
अतालिसे मे कुणई पओस।
दुक्खस्स सपीलमुवेइ बाले
न लिप्पई तेण मुणी विरागो।।
(उत्त ३२ ६५)

जो मनोहर रस में एकान्त अनुरक्त होता है और अमनोहर रस में द्वेष करता है, वह अज्ञानी दु:खात्मक पीडा को प्राप्त होता है। इसलिए विरक्त मुनि उनमे लिप्त नहीं होता।

३४२

रसे विरत्तो मणुओ विसोगो
एएण दुक्खोहपरपरेण।
न लिप्पए भवमज्झे वि सतो
जलेण वा पोक्खरिणीपलास।।
(उत्त ३२ ७३)

रस से विरक्त मनुष्य शोकमुक्त बन जाता है। जैसे कमलिनी का पत्र जल मे लिप्त नहीं होता, वैसे ही वह संसार मे रहकर अनेक दु खो की परपरा से लिप्त नहीं होता।

एगतरत्ते रुइरसि फासे
अतालिसे से कुणई पओस।
दुक्खस्स सपीलमुवेइ बाले
न लिप्पई तेण मुणी विरागो।।
(उत्त ३२ · ७८)

जो मनोहर स्पर्श मे एकान्त अनुरक्त होता है और अमनोहर स्पर्श में द्वेष करता है, वह अज्ञानी दु खात्मक पीडा को प्राप्त होता है। इसलिए विरक्त मुनि उनमे लिप्त नहीं होता।

३४४

फासे विरत्तो मणुओ विसोगो
एएण दुक्खोहपरपरेण।
न लिप्पए भवमज्झे वि सतो
जलेण वा पोक्खरिणीपलासं।।
(उत्त ३२ : ८६)

स्पर्श से विरक्त मनुष्य शोकमुक्त बन जाता है। जैसे कमलिनी का पत्र जल मे लिप्त नहीं होता, वैसे ही वह संसार मे रहकर अनेक दु खो की परपरा से लिप्त नहीं होता।

३४५

एगतरत्ते रुइरसि भावे
अतालिसे से कुणइ पओस।
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले
न लिप्पई तेण मुणी विरागो।।
(उत्त ३२ ९१)

जो मनोहर भाव मे एकान्त अनुरक्त होता है और अमनोहर भाव मे द्वेष करता है, वह अज्ञानी दुःखात्मक पीडा को प्राप्त होता है। इसलिए विरक्त मुनि उनमे लिप्त नहीं होता।

३४६

भावे विरत्तो मणुओ विसोगो
एएण दुक्खोहपरपरेण।
न लिप्पए भवमज्झे वि सतो
जलेण वा पोक्खरिणीपलास।।
(उत्त ३२ · ६६)

भाव से विरक्त मनुष्य शोकमुक्त बन जाता है। जैसे कमलिनी का पत्र जल मे लिप्त नहीं होता, वैसे ही वह ससार मे रहकर अनेक दु:खो की परपरा से लिप्त नहीं होता।

३४७

तम्हा एएसि कम्माण
अणुभागे वियाणिया।
एएसि सवरे चेव
खवणे य जए बुहे।।

(उत्त ३३ · २५)

कर्मो के अनुभागो को जानकर बुद्धिमान् इनका निरोध और क्षय करने का यत्न करे।

३४८

तम्हा एयाण लेसाणं
अणुभागे वियाणिया।
अप्पसत्थाओ वज्जित्ता
पसत्थाओ अहिट्ठेज्जासि।।

(उत्त ३४ · ६१)

लेश्याओ के अनुभागो को जानकर मुनि अप्रशस्त लेश्याओ का वर्जन करे और प्रशस्त लेश्याओ को स्वीकार करे।

३४६

गिहवास परिच्चज्ज
पवज्ज अस्सिओ मुणी।
इमे संगे वियाणिज्जा
जेहिं सज्जति माणवा।।

(उत्त ३५ २)

जो मुनि गृह-वास को छोडकर प्रव्रज्या को अगीकार कर चुका, वह उन सगो (लेपो) को जाने, जिनसे मनुष्य सक्त (लिप्त) होता है।

३५०

तहेव हिस अलिय
चोज्ज अबभसेवण।
इच्छाकाम च लोभ च
सजओ परिवज्जए।।
(उत्त ३५ ३)

सयमी मुनि हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य-सेवन, काम-इच्छा (अप्राप्त वस्तु की आकाक्षा), और लोभ—इन सबका परिवर्जन करे।

३५१

मणोहरं चित्तहरं
मल्लधूवेण वासिय।
सकवाडं पडुरुल्लोय
मणसा वि न पत्थए।।
(उत्त ३५ ४)

जो स्थान मनोहर चित्रो से आकीर्ण, माल्य और धूप से सुवासित, किवाड सहित, श्वेत चन्दवा से युक्त हो, वैसे स्थान की मन से भी अभिलाषा न करे।

३५२

इदियाणि उ भिक्खुस्स
तारिसम्मि उवस्सए।
दुक्कराइ निवारेउ
कामरागविवड्ढणे।।

(उत्त ३५ ५)

काम-राग को बढाने वाले वैसे उपाश्रय में इन्द्रियों का निवारण करना, उन पर नियन्त्रण पाना, भिक्षु के लिए दुष्कर होता है।

३५३

सुसाणे सुन्नगारे वा
रुक्खमूले व एक्कओ।
पइरिक्के परकडे वा
वास तत्थभिरोयए।।

(उत्त ३५ ६)

एकाकी भिक्षु श्मशान मे, शून्यगृह मे, वृक्ष के मूल मे अथवा परकृत एकान्त स्थान मे रहने की इच्छा करे।

३५४

फासुयम्मि अणाबाहे
इत्थीहि अणभिद्दुए।
तत्थ सकप्पए वास
भिक्खु परमसजए।।

(उत्त ३५ ७)

परम सयत भिक्षु प्रासुक, अनाबाध और स्त्रियो के उपद्रव से रहित स्थान मे रहने का सकल्प करे।

न सय गिहाइ कुज्जा
णेव अन्नेहि कारए।
गिहकम्मसमारभे
भूयाण दीसई वहो।।

तसाण थावराण च
सुहुमाण बायराण य।
तम्हा गिहसमारभ
संजओ परिवज्जए।।

(उत्त ३५ ८, ९)

भिक्षु न स्वय घर बनाए और न दूसरो से बनवाए। गृह-निर्माण के समारभ (प्रवृत्ति) मे जीवो—त्रस और स्थावर, सूक्ष्म और बादर का वध देखा जाता है। इसलिए सयत भिक्षु गृह समारम्भ का परित्याग करे।

तहेव भत्तपाणेसु
पयण पयावणेसु य।
पाणभूयदयट्ठाए
न पये न पयावए।।

(उत्त ३५ १०)

भक्त-पान के पकाने और पकवान में हिंसा होती है, अत प्राणो और भूतो की दया के लिए भिक्षु न पकाए और न पकवाए।

३५७

जलधन्ननिस्सिया जीवा
पुढवीकट्ठनिस्सिया।
हम्मंति भत्तपाणेसु
तम्हा भिक्खू न पायए।।
(उत्त ३५ ११)

भक्त और पान के पकवाने मे जल और धान्य के आश्रित तथा पृथ्वी और काष्ठ के आश्रित जीवो का हनन होता है, इसलिए भिक्षु न पकवाए।

३५८

विसप्पे सव्वओधारे
बहुपाणविणासणे।
नत्थि जोइसमे सत्थे
तम्हा जोइ न दीवए।।

(उत्त ३५ . १२)

अग्नि, फैलने वाली, सब ओर से धार वाली और बहुत जीवो का विनाश करने वाली होती है, उसके समान दूसरा कोई शस्त्र नहीं होता, इसलिए भिक्षु उसे न जलाए।

हिरण्ण जायरूव च
मणसा वि न पत्थए।
समलेट्ठुकचणे भिक्खू
विरए कयविक्कए।।
(उत्त. ३५ . १३)

क्रय और विक्रय से विरत, मिट्टी के ढेले और सोने को समान समझने वाला भिक्षु सोने और चादी की मन से भी इच्छा न करे।

३६०

किणंतो कइओ होइ
विक्किणंतो य वाणिओ।
कयविक्कयम्मि वट्‌टंतो
भिक्खू न भवइ तारिसो।।
(उत्त. ३५ : १४)

वस्तु को खरीदने वाला क्रयिक होता है और बेचने वाला वणिक्। क्रय और विक्रय मे वर्तन करने वाला भिक्षु वैसा नहीं होता—उत्तम भिक्षु नहीं होता।

३६१

भिक्खियव्वं न केयव्वं
भिक्खुणा भिक्खवत्तिणा।
कयविक्कओ महादोसो
भिक्खावत्ती सुहावहा।।
(उत्त ३५ १५)

भिक्षा-वृत्ति वाले भिक्षु को भिक्षा ही करनी चाहिए, क्रय-विक्रय नहीं। क्रय-विक्रय महान् दोष है। भिक्षा-वृत्ति सुख को देने वाली है।

३६२

समुयाण उछमेसिज्जा
जहासुत्तमणिंदिय।
लाभालाभम्मि संतुट्ठे
पिडवाय चरे मुणी।।

(उत्त ३५ : १६)

मुनि सूत्र के अनुसार, अनिन्दित और सामुदायिक उञ्छ की एषणा करे। वह लाभ और अलाभ से सन्तुष्ट रहकर पिण्ड-पात (भिक्षा) की चर्या करे।

अलोले न रसे गिद्धे
जिब्भादते अमुच्छिए।
न रसट्ठाए भुजिज्जा
जवणट्ठाए महामुणी।।

(उत्त ३५ : १७)

अलोलुप, रस मे अगृद्ध, जीभ का दमन करने वाला और अमूर्च्छित महामुनि रस (स्वाद) के लिए न खाए, किन्तु जीवन-निर्वाह के लिए खाए।

३६४

अच्चणं रयणं चेव
वंदणं पूयणं तहा।
इड्डीसक्कारसम्माणं
मणसा वि न पत्थए।।
(उत्त. ३५ : १८)

मुनि अर्चना, रचना (अक्षत, मोती आदि का स्वस्तिक बनाना), वन्दना, पूजा, ऋद्धि, सत्कार और सम्मान की मन से भी प्रार्थना (अभिलाषा) न करे।

३६५

इइ जीवमजीवे य
सोच्चा सद्दहिऊण य।
सव्वनयाण अणुमए
रमेज्जा सजमे मुणी।।
(उत्त ३६ २४६)

जीव और अजीव के स्वरूप को सुनकर, उसमे श्रद्धा उत्पन्न कर मुनि ज्ञान-क्रिया आदि सभी नयो के द्वारा अनुमत सयम मे रमण करे।

गोचरी के लिए गया हुआ मुनि गृहस्थ के घर मे न बैठे।

सूक्त-कण

१

विहगमा व पुप्फेसु
दाणभत्तेसणे रया।

(द. १ · ३ ग, घ)

श्रमण प्रासुक दान-भक्त की एषणा में रत होते हैं, जैसे भ्रमर पुष्पों के रस में।

२

वयं च वित्तिं लब्भामो
न य कोइ उवहम्मई।

(द १ · ४ क, ख)

हम इस तरह से वृत्ति—भिक्षा प्राप्त करेंगे कि किसी जीव का उपहनन न हो।

३

अहागडेसु रीयंति
पुप्फेसु भमरा जहा।

(द १ ४ ग, घ)

श्रमण यथाकृत-गृहस्थो के यहाँ सहज रूप से बना आहार लेते हैं, जैसे भ्रमर पुष्पो से रस।

४

महुकारसमा बुद्धा
जे भवंति अणिस्सिया।

(द १ ५ क, ख)

प्रबुद्ध पुरुष मधुकर के समान अनिश्रित होते हैं, वे किसी एक पर आश्रित नहीं होते।

५

नाणापिंडरया दंता
तेण वुच्चति साहुणो।

(द १ ५ ग, घ)

जो नाना पिण्ड-सामुदानिक भिक्षा मे रत होते हैं, दान्त होते है वे अपने इन्हीं गुणो से साधु कहलाते हैं।

६

न सा महं नोवि अहं पि तीसे
इच्चेव ताओ विणएज्ज रागं।

(द २ ४ ग, घ)

'वह मेरी नहीं है और न मैं ही उसका हूँ'—ऐसा चिन्तन करता हुआ मुमुक्षु स्त्री के प्रति विषय-राग का विनय न करे।

७

आयावयाही चय सोउमल्ल।

(द २ ५ क)

विषय-वासना को दूर करने के लिए स्वय को तपाओ तथा सुकुमारता का त्याग करो।

८

मा कुले गन्धणा होमो।

(द २ ८ ग)

हम कुल मे गन्धन (वमे हुए विष को पीने वाले) सर्प की तरह न हो।

६

सजम निहुओ चर।

(द २ ८ घ)

तुम निभृत-स्थिर मन हो सयम का पालन करो।

१०

वायाइद्धो व्व हडो,
अट्ठियप्पा भविस्ससि।

(द २ ६ ग, घ)

यदि तू स्त्रियो के प्रति राग-भाव करता रहेगा तो वायु से आहत हट जलीय वनस्पति, सेवाल की तरह अस्थित-आत्मा हो जायेगा।

११

विणियट्टन्ति भोगेसु,
जहा से पुरिसोत्तमो।

(द २ ११ ग, घ)

प्रविचक्षण मनुष्य भोगो से वैसे ही दूर हो जाता है, जैसे कि पुरुषोत्तम रथनेमि हुए।

१२

अकुसेण जहा नागो, धम्मे सपडिवाइओ।

(द २ १० ग, घ)

सुभाषित वचनो को सुनकर रथनेमि धर्म मे वैसे ही स्थिर हो गए जैसे अकुश से नाग-हाथी होता है।

१३

पचनिग्गहणा धीरा
निग्गथा उज्जुदसिणो।

(द ३ ११ ग, घ)

निर्ग्रन्थ पाचो इन्द्रियो का निग्रह करने वाले, धीर और ऋजुदर्शी होते हैं।

१४

आयावयति गिम्हेसु।

(द ३ १२ क)

निर्ग्रन्थ ग्रीष्मकाल मे सूर्य की आतापना लेते हैं।

१५

हेमतेसु अवाउडा।

(द ३ १२ ख)

वे हेमन्त–शीतकाल मे, खुले बदन रहते हैं।

१६

वासासु पडिसलीणा।

(द ३ १२ ग)

वे वर्षा में प्रतिसलीन रहते हैं–एक स्थान में रहते हैं–विहार नहीं करते।

१७

सजया सुसमाहिया।

(द ३ १२ घ)

निर्ग्रन्थ सुसमाहित होते हैं।

१८

परीसहरिऊदता
धुयमोहा जिइदिया।।

(द ३ १३ क, ख)

श्रमण परिषह रूपी रिपुओं का दमन करने वाले, धुत-मोह और जितेन्द्रिय होते हैं।

१६

सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा
पक्कमति महेसिणो।

(द ३ १३ ग, घ)

श्रमण महर्षि सर्व दु खो के प्रहाण-नाश के लिए पराक्रम करते हैं।

२०

दुक्कराइ करेत्ताण
दुस्सहाइ सहेत्तु य।

(द ३ १४ क, ख)

निर्ग्रन्थ दुष्कर को करते हुए ओर दु सह को सहते हुए चर्या करते हैं।

२१

तया गइ बहुविह
सव्वजीवाण जाणई।

(द ४ १४ ग, घ)

जीवो और अजीवो को जान लेने पर मनुष्य सब जीवो की बहुविध गतियो को भी जान लेता है।

२२

तया पुण्ण च पाव च
बध मोक्ख च जाणई।

(द ४ १५ ग, घ)

जब मनुष्य जीवो की बहुविध-गतियो को जान लेता है, तब वह पुण्य, पाप, बन्ध और मोक्ष को भी जान लेता है।

२३

जया निव्विदए भोए
जे दिव्वे जे य माणुसे।

(द ४ १६ ग, घ)

जब मनुष्य पुण्य, पाप आदि को जान लेता है तब वेह दैविक और मानुषिक भोगो से विरक्त हो जाता है।

२४

तया चयइ सजोग
सब्भितरबाहिर।

(द ४ १७ ग, घ)

जब मनुष्य भोगो से विरक्त हो जाता है तब वह आभ्यन्तर और बाह्य सयोगो को त्याग देता है।

२५

तया मुडे भवित्ताण
पव्वइए अणगारिय।

(द ४ १८ ग, घ)

जब मनुष्य सर्व सयोगो को त्याग देता है तब वह मुंड होकर अनगार वृत्ति को स्वीकार करता है।

२६

तया सवरमुक्किट्ठ
धम्म फासे अणुत्तरं।

(द १६ ग, घ)

जब मनुष्य अनगार-वृत्ति को स्वीकार कर लेता है तब वह उत्कृष्ट सवरात्मक अनुत्तर धर्म का स्पर्श करता है।

२७

तया लोगमलोग च
जिणो जाणइ केवली।

(द ४ २२ ग, घ)

जब मनुष्य केवल ज्ञान और केवल दर्शन को प्राप्त कर लेता है तब वह जिन और केवली होकर लोक तथा अलोक को जान लेता है।

२८

तया जोगे निरुभित्ता
सेलेसि पडिवज्जई।

(द ४ २३ ग, घ)

जब मनुष्य लोक तथा आलेक को जान लेता है तव वह योगो (मन, वाणी और शरीर की प्रवृत्तियो) का निरोध कर शैलेशी अवस्था को प्राप्त होता है।

२६

तया कम्म खवित्ताण
सिद्धि गच्छइ नीरओ।

(द ४ २४ ग, घ)

जब मनुष्य शैलेशी अवस्था को प्राप्त होता हे तब वह कर्म का क्षय कर रज-मुक्त बन सिद्धि को प्राप्त करता है।

३०

तया लोगमत्थयत्थो
सिद्धो हवइ सासओ।

(द ४ २५ ग, घ)

जब मनुष्य सिद्धि को प्राप्त होता है तव वह लोक के अग्र भाग पर प्रतिष्ठित होकर शाश्वत सिद्ध होता है।

३१

सुहसायगस्स समणस्स
सायाउलगस्स निगामसाइस्स।

(द ४ २६ क, ख)

जो श्रमण सुख का रसिक और सात के लिए आकुल होता है, उसके लिए सुगति दुर्लभ है।

३२

उच्छो लणापहोइस्स
दुलहा सुग्गइ तारिसगस्स।

(द ४ २६ ग, घ)

जो श्रमण हाथ, पैर आदि को बार-बार धोने वाला होता है, उसके लिए सुगति दुर्लभ है।

३३

परीसहे जिणतस्स
सुलहा सुग्गइ तारिसगस्स।

(द ४ २७ ग, घ)

जो श्रमण परीषहो को जीतने वाला होता है, उसके लिए सुगति सुलभ है।

३४

इच्चेयं छज्जीवणियं
सम्मद्दिट्ठी सया जए।
दुलहं लभित्तु सामण्णं
कम्मुणा न विराहेज्जासि।।

(द ४ : २८)

दुर्लभ श्रमणभाव को प्राप्त कर सम्यक्‌दृष्टि और सतत सावधान श्रमण इस षड्जीवनिका की कर्मणा—मन, वचन और काया से—विराधना न करे।

३५

असंभतो अमुच्छिओ
भत्तपाणं गवेसए।

(द ५ (१) : १ ख, घ)

मुनि असम्भ्रांत और अमूर्च्छित रहता हुआ यथाकाल भक्त-पान की गवेषणा करे।

३६

चरे मंदमणुव्विग्गो
अव्वक्खित्तेण चेयसा।

(द ५ (१) : २ ग, घ)

मुनि धीमे-धीमे, अनुद्विग्न और अव्याक्षिप्त चित्त से चले।

३७

वज्जतो बीयहरियाइ
पागे य दगमट्टिय।

(द. ५ (१) ३ ग, घ)

मुनि, सचित्त बीज, हरित, प्राणी, जल और मिट्टी से बचता हुआ चले।

३८

जयमेव परक्कमे।

(द ५ (१) ६ घ)

सुसमाहित सयमी यतनापूर्वक गमन करे।

३९

न चरेज्ज वासे वासते।

(द ५ (१) ८ क)

मुनि वर्षा बरसते समय भिक्षा के लिए बाहर न जाए।

४०

महियाए व पडतीए।

(द ५ (१) ८ ख)

मुनि कुहरा पडते समय न विचरे।

४१

महावाए व वायते।

(द ५ (१) ८ ग)

जोर से हवा चल रही हो उस समय मुनि न विचरे।

४२

तिरिच्छसपाइमेसु वा।

(द ५ (१) ८ घ)

मार्ग मे तिर्यक् सपातिम जीव छा रहे हो मुनि उस समय न विचरे।

४३

न चरेज्ज वेससामते
बभचेरवसाणुए।
बभयारिस्स दतस्स
होज्जा तत्थ विसोत्तिया।।

(द ५ (१) ६)

ब्रह्मचर्य का वशवर्ती मुमुक्षु वेश्याबाडे के समीप न जाये। वहाँ दान्त, मन और इन्द्रियो को जीतने वाले ब्रह्मचारी के भी विस्रोतसिका हो सकती है।

४४

ससग्गीए अभिक्खण
सामण्णम्मि य ससओ।

(द ५ (१) १० ख, घ)

अस्थान मे विचरने वाले पुरुष के वेश्याओ के ससर्ग के कारण श्रामण्य मे सन्देह हो सकता है।

४५

वज्जए वेससामंत
मुणी एगंतमस्सिए।

(द ५ (१) ११)

एकान्त (मोक्ष-मार्ग) का अनुगमन करने वाला मुनि वेश्याओं के वास-स्थान का वर्जन करे।

४६

सडिब्भं कलहं जुद्धं
दूरओ परिवज्जए।

(द ५ (१) १२ ग, घ)

श्रमण, बच्चो के क्रीडास्थल, कलह और युद्ध (स्थान) को दूर से टालकर जाये।

४७

अणुन्नए नावणए
अप्पहिट्ठे अणाउले।

(द ५ (१) १३ क, ख)

मुनि न ऊंचा मुँह कर चले, न नीचा मुँह कर चले। न हृष्ट होता हुआ चले और न आकुल होकर चले।

५२

मामग परिवज्जए।

(द ५ (१) १७ ख)

मुनि मामक (जिसमे प्रवेश करना निषिद्ध हो) उस घर का परिवर्जन करे।

५३

अचियत्तकुल न पविसे।

(द. ५ (१) : १७ ग)

मुनि अप्रीतिकर कुल मे प्रवेश न करे।

५४

चियत्त पविसे कुल।

(द ५ (१) १७ घ)

मुनि प्रीतिकर कुल मे प्रवेश करे।

५५

साणीपावारपिहिय
अप्पणा नावपगुरे।

(द ५ (१) १८ क, ख)

मुनि गृहपति की आज्ञा लिए बिना सन और मृग-रोम के बने वस्त्र से ढँका हुआ द्वार स्वय न खोले।

५६

कवाड नो पणोल्लेज्जा।

(द ५ (१) १८ ग)

मुनि गृहस्वामी की अनुमति के बिना किवाड न खोले।

५७

वच्चमुत्त न धारए।

(द ५ (१) १६ ख)

मुनि मल-मूत्र की बाधा को रोक कर न रखे।

५८

ओगास फासुयं नच्चा
अणुन्नविय वोसिरे।

(द ५ (१) १६ ग, घ)

मुनि प्रासुक-स्थान को देख स्वामी की आज्ञा प्राप्त कर वहा मल-मूत्र का उत्सर्ग करे।

५६

नीयदुवारं तमस
कोट्ठग परिवज्जए।

(द ५ (१) २० क, ख)

(प्राणी न देखे जा सकें वैसे) निम्न द्वार वाले अंधकारमय कोष्ठक का मुनि परिवर्जन करे।

६०

जत्थ पुप्फाइ बीयाइ
विप्पइण्णाइ कोट्ठए।
(द ५ (१) २१ क, ख)

जहॉ कोष्ठक मे पुष्प, बीजादि बिखरे हो, वहाँ मुनि प्रवेश न करे।

६१

अहुणोवलित्त उल्ल
दट्ठूण परिवज्जए।
(द ५ (१) २१ ग, घ)

कोष्ठक को तत्काल का लीपा और गीला देखे तो मुनि उसका परिवर्जन करे।

६२

उल्लघिया न पविसे।
विऊहित्ताण व सजए।
(द ५ (१) २२ ग, घ)

मुनि पशु तथा वच्चे को लाघकर या हटाकर कोठे मे प्रवेश न करे।

६३

नियट्टेज्ज अयपिरो।

(द ५ (१) २३ घ)

भिक्षा का निषेध करने पर मुनि बिना कुछ कहे वापस चला जाए।

६४

कुलस्स भूमि जाणित्ता
मिय भूमि परक्कमे।

(द ५ (१) २४ ग, घ)

मुनि भिक्षा के लिए कुल-भूमि (कुल मर्यादा) को जानकर मित-भूमि मे जाए।

६५

सिणाणस्स य वच्चस्स
सलोग परिवज्जए।

(द ५ (१) २५ ग, घ)

मुनि जहा से स्नान और शौच का स्थान दिखाई पडता हो, उस भूमि-भाग का परिवर्जन करे, वहां खडा न रहे।

६६

अकप्पिय न इच्छेज्जा
पडिगाहेज्ज कप्पिय।

(द ५ (१) २७ ग, घ)

मुनि अकल्पिक वस्तु न ले। कल्पिक ग्रहण करे।

६७

दिज्जमाण न इच्छेज्जा
पच्छाकम्म जहि भवे।

(द ५ (१) ३५ ग, घ)

जहा पश्चात्-कर्म की सभावना हो वहा उन साधनो से दिया जाने वाला आहार मुनि न ले।

६८

भुज्जमाण विवज्जेज्जा
भुत्तसेस पडिच्छए।

(द ५ (१) ३६ ग, घ)

अपने लिए बनाया हुआ आहार गर्भवती स्त्री खा रही हो तो मुनि उसका विसर्जन करे। खाने के बाद बचा हो वह ले।

६९

उट्ठिया वा निसीएज्जा
निसन्ना वा पुणुट्ठए।
त भवे भत्तपाण तु
सजयाण अकप्पिय।।

(द ५ (१) ४० ग, घ, ४१ क, ख)

काल-मासवती गर्भिणी खडी हो और भिक्षा देने के लिए कदाचित् बैठ जाए अथवा बैठी हो और खडी हो जाए तो उसके द्वारा दिया जाने वाला भक्त-पान सयमियो के लिए अकल्प्य होता है।

७०

त निक्खिवित्तु रोयत
आहरे पाणभोयण।
त भवे भत्तपाण तु
सजयाण अकप्पिय।।

(द ५ (१) ४२ ग, घ ४३ क, ख)

स्तनपान कराती हुई स्त्री, बालक या बालिका को रोता हुआ छोडकर भक्त-पान लाए, वह भक्त-पान सयति के लिए अकल्पनीय होता है।

७१

ज जाणेज्ज सुणेज्जा वा
दाणट्ठा पगड इम।
त भवे भत्तपाण तु
सजयाण अकप्पिय।।

(द ५ (१) ४७ ग, घ, ४८ क, ख)

मुनि यह जान जाए या सुन ले कि भक्त-पान दानार्थ तैयार किया है तो वह भक्त-पान सयति के लिए अकल्पनीय होता है।

७२

ज जाणेज्ज सुणेज्जा वा
पुण्णट्ठा पगड इम।
त भवे भत्तपाण तु
सजयाण अकप्पिय।।

(द ५ (१) ४९ ग, घ, ५० क, ख)

मुनि यह जान जाये या सुनले कि भक्त-पान पुण्यार्थ तैयार किया हुआ है तो वह भक्त-पान संयति के लिए अकल्पनीय होता है।

७३

ज जाणेज्ज सुणेज्जा वा
वणिमट्ठा पगड इम।
त भवे भत्तपाण तु
सजयाण अकप्पिय।।

(द ५ (१) ५१ ग, घ, ५२ क, ख)

मुनि यह जान ले या सुनले की भक्त-पान वनीपको-भिखारियो के निमित्त तैयार किया हुआ है, तो वह भक्त-पान सयति के लिए अकल्पनीय होता है।

७४

मीसजाय च वज्जए।

(द ५ (१) ५५ घ)

मुनि मिश्रजात आहार न ले।

७५

ज जाणेज्ज सुणेज्जा वा
समणट्ठा पगड इम।
त भवे भत्तपाण तु
सजयाण अकप्पिय।

(द ५ (१) ५३ ग, घ, ५८ क, ख)

मुनि यह जान जाये या सुन ले कि भक्त-पान श्रमणो के निमित्त तैयार किया गया है तो वह भक्त-पान सयति के लिए अकल्पनीय होता है।

७६

उग्गम से पुच्छेज्जा।

(द ५ (१) ५६ क)

सयमी मुनि गृहस्थ से आहार का उद्‌गम पूछे।

७७

सोच्चा निस्सकिय सुद्ध
पडिगाहेज्ज सजए।

(द ५ (१) ५६ ग, घ)

दाता से प्रश्न का उत्तर सुनकर मुनि निशकित और शुद्ध आहार ले।

७८

पुप्फेसु होज्ज उम्मीस
बीएसु हरिएसु वा।
त भवे भत्तपाण तु
सजयाण अकप्पिय।।

(द ५ (१) ५७ ग, घ, ५८ क, ख)

यदि भक्त-पान पुष्प, बीज और हरियाली से उन्मिश्र हो तो वह भक्त-पान सयति के लिए अकल्पनीय होता है।

७९

उदगम्मि होज्ज निक्खित्त
उत्तिगपणसेसु वा।
त भवे भत्तपाण तु
सजयाण अकप्पिय।।

(द ५ (१) ५९ ग, घ, ६० क, ख)

यदि भक्त-पान पानी, उत्तिग और पनक पर निक्षिप्त हो तो वह भक्त-पान सयति के लिए अकल्पनीय होता है।

८०

तेउम्मि होज्ज निक्खित्त
त च सघट्टिया दए।
त भवे भत्तपाण तु
सजयाण अकप्पिय।।

(द ५ (१) ६१ ग, घ, ६२ क, ख)

यदि भक्त-पान अग्नि पर निक्षिप्त हो और उसका (अग्नि का) स्पर्श कर दे तो वह भक्त-पान संयति के लिए अकल्पनीय होता है।

८१

आलोए गुरुसगासे
ज जहा गहिय भवे।

(द ५ (१) ९० ग, घ)

भिक्षा से लौटकर मुनि गुरु के समीप आलोचना करे— जिस प्रकार से भिक्षा ली हो उसी पकार से गुरु को कहे।

८२

अहो जिणेहिं असावज्जा
वित्ती साहूण देसिया।
(द ५ (१) ९२ क, ख)

कितना आश्चर्य है कि जिन भगवान् ने साधुओ के लिए निरवद्य भिक्षावृत्ति का उपदेश दिया है।

८३

मोक्खसाहणहेउस्स
साहुदेहस्स धारणा।
(द ५ (१) ९२ ग, घ)

मोक्ष-साधना के हेतुभूत सयमी शरीर के धारण के लिए मुनि आहार करे।

८४

जइ मे अणुग्गह कुज्जा
साहू होज्जामि तारिओ।
(द ५ (१) · ९४ ग, घ)

मोक्षार्थी मुनि सोचे—यदि आचार्य और साधु मुझ पर अनुग्रह करे—मेरे द्वारा आनीत भोजन मे सहभागी बने तो मैं निहाल हो जाऊ—मानू कि उन्होने मुझे भवसागर से तार दिया।

८५

साहवो तो चियत्तेण
निमतेज्ज जहक्कम।
(द ५ (१) ६५ क, ख)

मुनि प्रेमपूर्वक साधुओ को यथाक्रम से भोजन के लिए निमन्त्रित करे।

८६

जइ तत्थ केइ इच्छेज्जा
तेहि सद्धि तु भुजए।
(द ५ (१) ६५ ग, घ)

निमन्त्रित साधुओ मे से यदि कोई साधु भोजन करना चाहे तो उनके साथ भोजन करे।

८७

अह कोइ न इच्छेज्जा
तओ भुजेज्ज एक्कओ।
(द ५ (१) ६६ क, ख)

यदि कोई साधु भोजन करना न चाहे तो मुनि अकेला ही भोजन करे।

८८

आलोए भायणे साहू
जय अपरिसाडय।

(द ५ (१) ९६ ग, घ)

मुनि खुले पात्र मे यतनापूर्वक नीचे नहीं डालता हुआ भोजन करे।

८९

तित्तग व कडुय व कसाय
अबिल व महुर लवण वा।
एय लद्धमन्नट्ठ-पउत्त
महुघय व भुजेज्ज सजए।

(द ५ (१) ९७)

गृहस्थ के लिए बना हुआ—तीता, कडुआ, कसैला, खट्टा, मीठा या नमकीन—जो भी आहार उपलब्ध हो उसे सयमी मुनि मधु-घृत की भाति खाये।

९०

उप्पण नाइहीलेज्जा
अप्प पि बहु फासुय।

(द ५ (१) ९९ क, ख)

मुनि विधिपूर्वक प्राप्त आहार की निन्दा न करे। प्रासुक आहार अल्प या अरस होते हुए भी बहुत या सरस होता है।

६१

मुहालद्ध मुहाजीवी
भुंजेज्जा दोसवज्जियं।

(द ५ (१) ९९ ग, घ)

मुधाजीवी मुनि मुधालब्ध और दोष-वर्जित आहार को समभाव से खाये।

६२

दुल्लहा उ मुहादाई
मुहाजीवी वि दुल्लहा।

(द ५ (१) १०० क, ख)

मुधादायी दुर्लभ है और मुधाजीवी भी दुर्लभ है।

६३

मुहादाई मुहाजीवी
दो वि गच्छंति सोग्गइं।

(द ५ (१) १०० ग, घ)

मुधादायी और मुधाजीवी—दोनों सुगति को प्राप्त होते हैं।

६४

पडिग्गह सलिहित्ताण
लेव–मायाए सजए।
(द ५ (२) १ क, ख)

मुनि पात्र मे रहे लेप-मात्र को पोछकर सब खा ले।

६५

दुगध वा सुगध वा
सव्व भुजे न छड्डए।
(द ५ (२) १ ग, घ)

आहार दुर्गन्धयुक्त हो या सुगन्धयुक्त मुनि सब खा ले। जूठा न छोडे।

६६

कालेण निक्खमे भिक्खू
कालेण य पडिक्कमे।
(द ५ (२) ४ क, ख)

मुनि समय पर भिक्षा के लिए जाए और समय पर वापिस आ जाये।

६७

सइ काले चरे भिक्खू
कुज्जा पुरिसकारिय।

(द ५ (२) ६ क, ख)

मुनि समय होने पर भिक्षा के लिए जाए। पुरुषकार-श्रम करे।

६८

तहेवुच्चावया पाणा
भत्तट्ठाए समागया।
त-उज्जुय न गच्छेज्जा
जयमेव परक्कमे।।

(द ५ (२) ७)

इसी प्रकार मुनि जहा नाना प्रकार के प्राणी भोजन के लिए एकत्रित हो मुनि उनके सम्मुख न जाए। उन्हे भय न हो, इस प्रकार यतनापूर्वक जाए।

६९

गोयरग्ग-पविट्ठो उ
न निसीएज्ज कत्थई।

(द ५ (२) ८ क, ख)

गोचरी के लिए गया हुआ मुनि गृहस्थ के घर मे न बैठे।

१००

कह च न पबधेज्जा
चिट्ठित्ताण व सजए।

(द. ५ (२) · ८ ग, घ)

गोचरी के लिए गया हुआ मुनि गृहस्थ के घर में खडा रहकर धर्म-कथा न कहे।

१०१

त अइक्कमित्तु न पविसे
न चिट्ठे चक्खु-गोयरे।
एगतमवक्कमित्ता
तत्थ चिट्ठेज्ज सजए।।

(द ५ (२) ११)

गृहस्थ के घर पर आहार के लिए उपस्थित श्रमण ,ब्राह्मण, कृपण या वनीपक आदि को लाँघकर मुनि घर मे प्रवेश न करे। गृहस्वामी या श्रमण आदि की दृष्टि पहुंचे वहा भी खडा न रहे, किन्तु एकान्त मे जाकर खडा हो जाए।

१०२

अप्पत्तिय सिया होज्जा
लहुत्त पवयणस्स वा।

(द ५ (२) ०७ ग, घ)

भिक्षाचरो को लाघकर घर मे प्रवेश करने ँ अप्रेम हो सकता है अथवा उससे प्रवचन-धर्म की लघुता होती है।

१०३

तओ तम्मि नियत्तिए

उवसकमेज्ज भत्तट्ठा।

(द ५ (२) १३ ख, ग)

वहा से भिक्षाचरो के चले जाने के पश्चात् सयमी मुनि आहार के लिए प्रवेश करे।

१०४

समुयाण चरे भिक्खू

कुल उच्चावय सया।

नीय कुलमइक्कम्म

ऊसढ नाभिधारए।

(द. ५ (२) : २५)

भिक्षु सदा समुदान भिक्षा करे, उच्च और नीच सभी कुलों में जाए। नीच कुल को छोड़कर उच्च कुल में न जाए।

१०५

अदीणो वित्तिमेसेज्जा

न विसीएज्ज पडिए

(द ५ (२) २६ क, ख)

मुनि अदीनभाव से वृत्ति (भिक्षा) की एषणा करे, न मिलने पर विषाद न करे।

१०६

मायन्ने एसणारए।

(द ५ (२) २६ घ)

मुनि मात्रा को जानने वाला हो, प्रासुक की एषणा मे रत हो।

१०७

बहु परघरे अत्थि
विविह खाइमसाइम।
न तत्थ पण्डिओ कुप्पे
इच्छा देज्ज परो न वा।

(द ५ (२) २७)

गृहस्थ के घर मे नाना प्रकार का और प्रचुर खाद्य-स्वाद्य होने पर भी गृहस्थ न दे तो पडित मुनि कोप न करे। यह सोचे—उसकी अपनी इच्छा है, दे या न दे।

१०८

वदमाणो न जाएज्जा।

(द ५ (२) २९ ग)

मुनि वन्दना (स्तुति) करता हुआ याचना न करे।

१०६

एवमन्नेसमाणस्स
सामण्णमणुचिट्ठई।

(द ५ (२) ३० ग, घ)

इस प्रकार समुदानचर्या का अन्वेषण करने वाले मुनि का श्रामण्य निर्बाधभाव से टिकता है।

११०

दुत्तोसओ य से होइ
निव्वाण च न गच्छई।

(द ५ (२) ३२ ग, घ)

लोभी साधु जिस किसी वस्तु से सन्तुष्ट नहीं होता तथा निर्वाण को प्राप्त नहीं होता।

१११

सतुट्ठो सेवई पत
लूहवित्ती सुतोसओ।

(द ५ (२) ३४ ग, घ)

आत्मार्थी मुनि सन्तुष्ट होता है, प्रान्त (असार) आहार का सेवन करता है, रूक्षवृत्ति और जिस किसी भी वस्तु से सन्तुष्ट होने वाला होता है।

११२

सुर वा मेरग वा वि
अन्न वा मज्जग रस
ससक्ख न पिबे भिक्खू
जस सारक्खमप्पणो।।

(द ५ (२) ३६)

अपने सयम की रक्षा करता हुआ भिक्षु सुरा, मेरक या अन्य किसी प्रकार का मादक रस आत्म-साक्षी से न पीए।

११३

वड्ढई सोडिया तस्स
मायामोस च भिक्खुणो।
अयसो य अनिव्वाण
सयय च असाहुया।

(द ५ (२) ३८)

उस भिक्षु के उन्मत्तता, माया-मृषा, अयश, अतृप्ति और सतत असाधुता—ये दोष बढते हैं।

११४

आयरिए नाराहेइ
समणे यावि तारिसो
गिहत्था वि ण गरहति
जेण जाणति तारिस।।

(द ५ (२) ४०)

मद्यप-मुनि न तो आचार्य की आराधना कर पाता है और न अन्य श्रमणो की भी। गृहस्थ भी उसे मद्यप मानते है इसलिए उसकी गर्हा करते हैं।

११५

एव तु अगुणप्पेही
गुणाण च विवज्जओ।
तारिसो मरणते वि
नाराहेइ सवर।।

(द ५ (२) ४१)

इस प्रकार अगुणो की प्रेक्षा (आसेवना) करने वाला और गुणो को वर्जने वाला मुनि मरणान्तकाल मे भी सवर की आराधना नहीं कर पाता।

११६

मज्जप्पमायविरओ
तवस्सी अइउक्कसो।

(द ५ (२) ४२ ग, घ)

तपस्वी मद्य-प्रमाद से विरत होता है और गर्व नहीं करता।

११७

तस्स पस्सह कल्लाण
अणेगसाहुपूइय।

(द ५ (२) ४३ क, ख)

मेधावी तपस्वी के अनेक साधुओ द्वारा प्रशसित (विपुल और अर्थ-सयुक्त) कल्याण को स्वय देखो।

११८

एव तु गुणप्पेही
आराहेइ सवर।

(द ५ (२) ४४ क, घ)

इस प्रकार गुण की प्रेक्षा (आसेवना) करने वाला मुनि मरणान्तकाल मे भी सवर की आराधना करता है।

११९

आयरिए आराहेइ
समणे यावि तारिसो।
(द ५ (२) ४५ क, ख)

वैसा गुणी साधु आचार्य की आराधना करता है और श्रमणो की भी।

१२०

गिहत्था वि ण पूयति
जेण जाणति तारिस।
(द ५ (२) ४५ ग, घ)

गृहस्थ भी उसे शुद्ध साधु मानते हैं, इसलिए उसकी पूजा करते हैं।

१२१

नरय तिरिक्खजोणि वा
बोही जत्थ सुदुल्लहा।
(द ५ (२) ४८ ग, घ)

तपादि का चोर नरक या तिर्यंचयोनि को पाता है जहाँ बोधि दुर्लभ होती है।

१२२

तिव्वलज्ज गुणव विहरेज्जासि।

(द ५ (२) ५० घ)

भिक्षु उत्कृष्ट सयम और गुण से सम्पन्न होकर विचरे।

१२३

गणिमागमसपन्न।

(द ६ १ ग)

गणी आगम-सम्पदा से युक्त होते हैं।

१२४

सिक्खाए सुसमाउत्तो।

(द ६ ३ घ)

गणी शिक्षा मे समायुक्त होते हैं।

१२५

आयारगोयर भीम
सयल दुरहिट्ठिय।

(द ६ ४ ग, घ)

मोक्षार्थी निर्ग्रन्थो का पूर्ण आचार का विषय भीम और दुर्धर होता है।

१२६

नन्नत्थ एरिस वुत्त
ज लोए परमदुच्चर।

(द ६ ५ क, ख)

मानव-जगत् के लिए इस प्रकार का अत्यन्त दुष्कर आचार निर्ग्रन्थ दर्शन के अतिरिक्त कहीं नहीं कहा गया है।

१२७

विउलट्ठाणभाइस्स
न भूय न भविस्सई।

(द ६ ५ ग, घ)

मोक्ष-स्थान की आराधना करने वाले के लिए ऐसा आचार अतीत मे न कहीं था और न कहीं भविष्य मे होगा।

१२८

अखडफुडिया कायव्वा।

(द ६ ६ ग)

मुमुक्षुओ को गुणो की आराधना अखण्ड और अस्फुटित रूप से करनी चाहिए।

१२६

तम्हा पाणवह घोर
निग्गथा वज्जयति ण।

(द ६ १० ग, घ)

प्राण-वध को भयानक जानकर निर्ग्रन्थ वर्जन करते हैं।

१३०

नो वि अन्न वयावए।

(द ६ ११ घ)

दूसरो से झूठ न बुलवाए।

१३१

नायरति मुणी लोए
भे यायणवज्जिणो

(द ६ १५ ग, घ)

चरित्र-भग के स्थान से बचने वाला मुनि अब्रह्मचर्य का आसेवन नहीं करता।

१३२

तम्हा मेहुणससग्गि
निग्गथा वज्जयति ण।

(द ६ १६ ग, घ)

(अब्रह्मचर्य महान् दोषो की राशि है) अत निर्ग्रंथ मैथुन के ससर्ग का वर्जन करते हैं।

१३३

न ते सन्निहिमिच्छन्ति
नायपुत्तवओरया।

(द ६ १७ ग, घ)

जो ज्ञात-पुत्र के वचन मे रत हैं, वे किसी भी वस्तु का सग्रह करने की इच्छा नहीं करते।

१३४

त पि सजमलज्जट्ठा
धारति परिहरति य।

(द ६ १९ ग, घ)

मुनि सयम और लज्जा की रक्षा के लिए ही उपाधि रखते हैं और उनका उपयोग करते हैं।

१३५

न सो परिग्गहो वुत्तो
मुच्छा परिग्गहो वुत्तो।

(द ६ २० क, ग)

मुनि के वस्त्र, पात्र आदि को परिग्रह नहीं कहा है। मूर्च्छा को परिग्रह कहा है।

१३६

सव्वत्थुवहिणा बुद्धा
सरक्खणपरिग्गहे।

(द ६ २१ क, ख)

बुद्ध पुरुष सयम की रक्षा के निमित्त ही उपाधि ग्रहण करते हैं।

१३७

अहो निच्च तवोकम्म
सव्वबुद्धेहि वण्णिय।

(द ६ २२ क, ख)

आश्चर्य है कि सभी बुद्ध पुरुषो ने श्रमणो के लिए नित्य तप कर्म का उपदेश दिया है।

१३८

जा य लज्जासमा वित्ती
एगभत्तं च भोयण।

(द ६ २२ ग, घ)

उन्होने सयम के अनुकूल वृत्ति और देहपालन के लिए एक बार भोजन करने का उपदेश दिया है।

१३६

जाइ राओ अपासतो
कहमेसणिय चरे ?

(द ६ २३ ग, घ)

जो त्रस और स्थावर सूक्ष्म प्राणी हैं उन्हे रात्रि मे नहीं देखा जा सकता। निर्ग्रन्थ रात्रि मे एषणा-चर्या कैसे कर सकता है?

१४०

दिया ताइ विवज्जेज्जा
राओ तत्थ कह चरे ?

(द ६ २४ ग, घ)

मुनि दिन मे जीवाकुल मार्ग आदि का विवर्जन कर सकता है पर रात मे ऐसा करना शक्य नहीं है। इसलिए निर्ग्रन्थ रात को भिक्षा के लिए कैसे जा सकता है ?

१४१

सव्वाहार न भुजति
निग्गथा राइभोयण।

(द ६ २५ ग, घ)

निर्ग्रन्थ रात्रि में किसी भी प्रकार का आहार नहीं करते।

१४२

पुढविकाय न हिसति
मणसा वयसा कायसा।
तिविहेण करणजोएण
सजया सुसमाहिया।

(द ६ २६)

सुसमाहित सयमी त्रिविध त्रिविध करणयोग से मन, वचन, काय एव कृत, कारित, अनुमति रूप से पृथ्वीकाय की हिंसा नहीं करते।

१४३

दोस दुग्गइवड्ढण।

(द ६ २८ ख)

पृथ्वीकाय आदि की हिंसा दुर्गतिवर्धक दोष है।

१४४

पुढविकायसमारभ
जावज्जीवाए वज्जए।

(द ६, २८ ग, घ)

मुनि जीवन भर के लिए पृथ्वीकाय के समारम्भ का वर्जन करे।

१४५

आउकाय न हिसति
मणसा वयसा कायसा।

(द ६ २९ क, ख)

निर्ग्रन्थ मन, वचन, काया से अप्काय की हिंसा नहीं करते।

१४६

तिविहेण करणजोएण
सजया सुसमाहिया।

(द ६ २९ ग, घ)

सुसमाहित सयमी त्रिविध त्रिविध करणयोग से मन, वचन, काय एव कृत, कारित, अनुमति रूप से अप्काय की हिसा के त्यागी होते हैं।

१४७

आउकाय विहिसतो
हिसई उ तयस्सिए।

(द ६ ३० क, ख)

अप्काय की हिसा करता हुआ मनुष्य उसके आश्रित (अनेक प्रकार के त्रस और स्थावर) प्राणियो की हिंसा करता है।

१४८

आउकायसमारभ
जावज्जीवाए वज्जए।

(द ६ : ३१ ग, घ)

अतः मुनि जीवन-पर्यंत अप्काय के समारम्भ का वर्जन करे।

१४९

जायतेय न इच्छति
पावग जलइत्तए।

(द ६ ३२ क, ख)

मुनि जाततेज—अग्नि जलाने की इच्छा नहीं करते।

१५०

तिक्खमन्नयर सत्थ
सव्वओ वि दुरासय।

(द ६ ३२ ग, घ)

अग्नि दूसरे शस्त्रो से अति तीक्ष्ण शस्त्र और सब ओर से दुराश्रय है।

१५१

भूयाणमेसमाघाओ
हव्ववाहो न ससओ।

(द ६ ३४ क, ख)

नि सन्देह यह हव्यवाह (अग्नि) जीवो के लिए घातक है।

१५२

त पईवपयावट्ठा
सजया किंचि नारभे।

(द ६ ३४ ग, घ)

सयमी प्रकाश और ताप के लिए अग्निकाय का कुछ भी आरम्भ न करे।

१५३

तेउकायसमारभ
जावज्जीवाए वज्जए।

(द ६ ३५ ग, घ)

मुनि जीवन-पर्यन्त अग्निकाय के समारंभ का वर्जन करे।

१५४

अनिलस्स समारंभ
बुद्धा मन्नंति तारिस।

(द ६ ३६ क, ख)

बुद्ध पुरुष वायु के समारंभ को अग्नि समारम्भ के तुल्य मानते हैं।

१५५

सावज्जबहुल चेय
नेय ताईहि सेविय।

(द ६ ३६ ग, घ)

वायुकाय का समारभ प्रचुर पाप-युक्त है। यह छहकाय के त्राता मुनियो के द्वारा आसेवित नहीं है।

१५६

न ते वीइउमिच्छन्ति
वीयावेऊण वा पर।

(द ६ · ३७ ग, घ)

इसलिए निर्ग्रन्थ वीजन आदि से हवा करना तथा दूसरो से करवाना नहीं चाहते।

१५७

न ते वायमुईरति
जय परिहरति य।

(द ६ ३८ ग, घ)

निर्ग्रन्थ वस्त्र आदि से वायु की उदीरणा नहीं करते, किन्तु यतनापूर्वक उनका परिभोग करते हैं।

१५८

दोस दुग्गइवद्ढण।

(द ६ ३६ ख)

वायुकाय का समारभ दुर्गति-वर्धक दोष है।

१५६

वाउकायसमारभ
जावज्जीवाए वज्जए।

(द ६ ३६ ग, घ)

अत निर्ग्रन्थ जीवन-पर्यन्त वायुकाय के समारभ का वर्जन करते हैं।

१६०

वणस्सइ न हिसति
मणसा वयसा कायसा।

(द ६ ४० क, ख)

, निर्ग्रन्थ मन, वचन, काया से वनस्पतिकाय की हिंसा नहीं करते।

१६१

तिविहेण करणजोएण
सजया सुसमाहिया

(द ६ ४० ग, घ)

सुसमाहित सयमी त्रिविध त्रिविध करणयोग से—मन, वचन, काया एव कृत, कारित, अनुमोदन से वनस्पतिकाय की हिसा के त्यागी होते हैं।

१६२

वणस्सइ विहिंसतो
हिंसई उ तयस्सिए।

(द ६ ४१ क, ख)

वनस्पति की हिंसा करता हुआ मनुष्य उसके आश्रित (अनेक त्रस और स्थावर) जीवो की हिंसा करता है।

१६३

वणस्सइसमारभ
जावज्जीवाए वज्जए।

(द ६ ४२ ग, घ)

निर्ग्रन्थ जीवन-पर्यन्त वनस्पति के समारभ का वर्जन करे।

१६४

तसकाय न हिंसति
मणसा वयसा कायसा।

(द ६ ४३ क, ख)

निर्ग्रन्थ मन, वचन, काया से त्रसकाय की हिंसा नहीं करते।

१६५

तिविहेण करणजोएण
सजया सुसमाहिया।

(द ६ ४३ ग, घ)

सुसमाहित सयमी त्रिविध त्रिविध करणयोग से—मन, वचन, काया एवं कृत, कारित व अनुमति से त्रसकाय की हिसा के त्यागी होते हैं।

१६६

तसकाय विहिसतो
हिसई उ तयस्सिए।

(द ६ ४४ क, ख)

त्रसकाय की हिंसा करता हुआ मनुष्य उसके आश्रित (अनेक त्रस-स्थावर) प्राणियों की हिंसा करता है।

१६७

दोस दुग्गइवड्ढण।

(द ६ ४५ ख)

त्रसकाय के समारभ को दुर्गति-वर्धक दोष जाने।

१६८

तसकायसमारभ
जावज्जीवाए वज्जए।

(द ६ ४५ ग, घ)

मुनि जीवन-पर्यंत त्रसकाय के समारभ का वर्जन करे।

१६६

ताइ तु विवज्जतो
सजम अणुपालए।

(द ६ ४६ ग, घ)

जो अकल्पनीय वस्तु हो उसका वर्जन करता हुआ मुनि संयम का पालन करे।

१७०

अकप्पिय न इच्छेज्जा
पडिगाहेज्ज कप्पिय।

(द ६ ४७ ग, घ)

मुनि अकल्पनीय (पिण्ड, शय्या–वसति, वस्त्र और पात्र) को ग्रहण करने की इच्छा न करे। अल्पनीय ग्रहण करे।

१७१

पिड सेज्ज च वत्थ च
चउत्थ पायमेव य।
अकप्पिय न इच्छेज्जा
पडिगाहेज्ज कप्पिय।।

(द ६ ४७)

मुनि अकल्पनीय पिण्ड शय्या-वसति, वस्त्र और पात्र को ग्रहण करने की इच्छा न करे किन्तु कल्पनीय ग्रहण करे।

१७२

वह ते समणुजाणति।

(द ६ ४८ ग)

(जो मुनि नित्याग्र, क्रीत, औद्देसिक और आहृत आहार ग्रहण करते है) वे प्राणिवध का अनुमोदन करते हैं।

१७३

वज्जयति ठियप्पाणो
निग्गथा धम्मजीविणो।

(द ६ ४९ ग, घ)

अत धर्मजीवी स्थितात्मा निर्ग्रंथ, नित्याग्र, क्रीत, औद्देशिक, आहृत अशन, पान आदि का वर्जन करते हैं।

१७४

भुजतो असणपाणाइ
आयारा परिभस्सइ।

(द ६ ५० ग, घ)

जो मुनि गृहस्थ के पात्र में अशन, पान आदि खाता है वह श्रमण के आचार से भ्रष्ट होता है।

१७५

जाइ छन्नति भूयाइ
दिट्ठो तत्थ असजमो।

(द ६ ५१ ग, घ)

बर्तनों को सचित्त जल से धोने में और उस जल को डालने मे प्राणियो की हिंसा होती है। अत वहाँ गृहस्थों के बर्तन में, भोजन करने मे, ज्ञानियो ने असंयम देखा है।

१७६

पच्छाकम्म पुरेकम्म
सिया तत्थ न कप्पई।

(द ६ ५२ क, ख)

गृहस्थ के बर्तन मे भोजन करने मे 'पश्चात् कर्म' और 'पुर कर्म' की संभावना है। अत वह निर्ग्रन्थ के लिए कल्प्य नहीं है।

१७७

एयमट्ठ न भुजति
निग्गथा गिहिभायणे।

(द ६ ५२ ग, घ)

एतदर्थ निर्ग्रन्थ गृहस्थ के बर्तन मे भोजन नहीं करते।

१७८

अणायरियमज्जाण
आसइत्तु सइत्तु वा।

(द ६ ५३ ग, घ)

आर्यों के लिए आसन्दी, पलग, मञ्च और आसालक पर बैठना या सोना अनाचीर्ण है।

१७६

गभीरविजया एए
पाणा दुप्पडिलेहगा।

(द ६ ५५ क, ख)

आसन्दी आदि गम्भीर-छिद्र वाले होते हैं। इनमें प्राणियो का प्रतिलेखन करना कठिन है।

१८०

आसदीपलियका य
एयमट्ठ विवज्जिया।

(द ६ ५५ ग, घ)

इसलिए आसन्दी, पलग आदि पर बैठना या सोना निर्ग्रन्थ के लिए वर्जित है।

१८१

विवत्ती बमचेरस्स।

(द ६ ५७ क)

गृहस्थ के घर मे बैठने से

(१) ब्रह्मचर्य का विनाश होता है।

१८२

पाणाण अवहे वहो।

(द ६ ५७ ख)

(२) प्राणियो का अवधकाल मे वध होता है।

१८३

वणीमगपडिग्घाओ।

(द ६ ५७ ग)

(३) भिक्षाचरो के अन्तराय होता है।

१८४

पडिकोहो अगारिण।

(द ६ ५७ घ)

(४) घरवालो को क्रोध उत्पन्न होता है।

१८५

अगुत्ती बभचेरस्स।

(द ६ ५८ क)

(५) ब्रह्मचर्य असुरक्षित होता है।

१८६

इत्थीओ यावि सकण।

(द ६ ५८ ख)

(६) स्त्री के प्रति शका उत्पन्न होती है।

१८७

वोक्कतो होइ आयारो
जढो हवइ सजमो।

(द ६ ६० ग, घ)

जो साधु स्नान करने की अभिलाषा करता है उसके आचार का उल्लघन होता है और उसका सयम परित्यक्त होता है।

१८८

वियडेणुप्पिलावए।

(द ६ ६१ घ)

प्रासुक जल से स्नान करने वाला भिक्षु भी भूमि मे रहे हुए सूक्ष्म प्राणियो को जल से प्लावित करता है।

१८९

तम्हा ते न सिणायति
सीएण उसिणेण वा।

(द ६ ६२ क, ख)

इसलिए मुनि शीत या उष्ण जल से स्नान नहीं करता।

१९०

जावज्जीव वय घोर
असिणाणमहिट्ठगा।

(द ६ ६२ ग, घ)

निर्ग्रन्थ जीवन भर घोर अस्नान व्रत का पालन करते हैं।

१९१

गायस्सुव्वट्टणट्ठाए
नायरति कयाइ वि।

(द ६ ६३ ग, घ)

मुनि शरीर का उबटन करने के लिए गन्ध-चूर्ण, कल्क, लोध्र, पद्मकेसर आदि का प्रयोग नहीं करते।

१६२

मेहुणा उवसतस्स
कि विभूसाए कारियं।

(द ६ ६४ ग, घ)

मैथुन से निवृत्त मुनि को विभूषा से क्या प्रयोजन ?

१६३

ससारसायरे घोरे
जेण पडइ दुरुत्तरे।

(द ६ ६५ ग, घ)

विभूषा से साधु दुस्तर ससार-सागर में गिरता है।

१६४

विभूसावत्तिय चेय
बुद्धा मन्नति तारिस।

(द ६ ६६ क, ख)

विभूषा मे प्रवृत्त मन को ज्ञानी विभूषा करने के तुल्य ही चिकने कर्म के बन्धन का हेतु मानते हैं।

१६५

सावज्जबहुल चेय
नेय ताईहि सेविय।

(द ६ ६६ ग, घ)

यह प्रचुर पापयुक्त है। यह छहकाय के त्राता मुनियो द्वारा आसेवित नहीं है।

१६६

उउप्पसन्ने विमले व चदिमा
सिद्धि विमाणाइ उवेति ताइणो।

(द ६ ६८ ग, घ)

त्राता मुनि शरद-ऋतु के चन्द्रमा की तरह मल-रहित होकर सिद्धि या सौधर्मावतसक आदि विमानो को प्राप्त करते हैं।

१६७

असच्चमोस सच्च च
गिर भासेज्ज पन्नव।

(द ७ ३ क, घ)

प्रज्ञावान् मुनि असत्याऽमृषा (व्यवहार-भाषा) और सत्य भाषा बोले।

१६८

तम्हा सो पुट्ठो पावेण,
किं पुण जो मुस वए।

(द ७ ५ ग, घ)

जो सत्य लगने वाली असत्य भाषा बोलता है उससे भी वह पाप से स्पृष्ट होता है तो फिर उसकी तो बात ही क्या जो साक्षात् मृषा-मिथ्या बोलता है।

१६६

सपयाईयमट्ठे वा,
त पि धीरो विवज्जए।

(द ७ ७ ग, घ)

जो भाषा वर्तमान और अतीत से सम्बन्धित अर्थ के विषय मे शंकित हो, उसका भी धीर-पुरुष विवर्जन करे।

२००

निस्सकिय भवे ज तु,
एवमेय ति निद्दिसे।

(द ७ १० ग, घ)

जो अर्थ नि शकित हो (उसके बारे मे ही) 'यह इस प्रकार ही है'—ऐसा कहे।

२०१

वाहिय वा वि रोगि त्ति
तेण चोरे त्ति नो वए।

(द ७ १२ ग, घ)

रोगी को रोगी एव चोर को चोर नहीं कहना चाहिए।

२०२

दमए दुहए वा वि,
नेव भासेज्ज पन्नव।

(द ७ १४ ग, घ)

ओ द्रमक ! ओ दुर्भग!—प्रज्ञावान् इस प्रकार न बोले।

२०३

होले गोले वसुले त्ति,
इत्थियं नेवमालवे।

(द ७ : १६ ग, घ)

हे होले !, हे गोले !, हे वृषले !—इस प्रकार स्त्रियो को आमन्त्रित न करे।

२०४

होल गोल वसुले त्ति,
पुरिसं नेवमालवे।

(द ७ : १६ ग, घ)

हे होल !, हे गोल !, हे वृषल !—इस प्रकार पुरुष को आमन्त्रित न करे।

२०५

जाव ण न विजाणेज्जा,
ताव जाइ त्ति आलवे।

(द ७ : २१ ग, घ)

स्त्री है या पुरुष—ऐसा निश्चित रूप से न जान ले तब-तक 'जाति' शब्द से बोले।

२०६

वाहिमा रहजोग त्ति,
नेव भासेज्ज पन्नव।

(द. ७ - २७ ग, घ)

बैल हल में जोतने योग्य है, वहन करने योग्य है, रथ में जोतने योग्य है—मुनि इस प्रकार न बोले।

२०७

तहा फलाइं पक्काइ,
पायखज्जाइं नो वए।

(द ७ : ३२ क, ख)

ये फल पके हुए हैं, पका कर खाने योग्य हैं—मुनि इस प्रकार न कहे।

२०८

वेलोइयाइ टालाइ,
वेहिमाइ त्ति नो वए।

(द ७ ३२ ग, घ)

ये फल अविलम्ब तोडने योग्य हैं, इनमें गुठली नहीं पडी है, ये दो टुकडे करने योग्य हैं—मुनि इस प्रकार न कहे।

२०९

लाइमा भज्जिमाओ त्ति
पिहुखज्ज त्ति नो वए।

(द ७ ३४ ग, घ)

औषधिया काटने योग्य हैं, भूनने योग्य हैं, चिडवा बनाकर खाने योग्य है—मुनि इस प्रकार न बोले।

२१०

तहेव सखडि नच्चा,
किच्च कज्ज ति नो वए।

(द ६ : ३६ क, ख)

इसी प्रकार संखडि (जीमनवार) और मृतभोज को जानकर—ये कृत्य करणीय हैं, मुनि इस प्रकार न कहे।

२११

तेणग वा वि वज्झे त्ति,
सुतित्थ त्ति य आवगा।

(द ६ ३६ ग, घ)

चोर मारने योग्य है, नदी अच्छे घाट वाली है—मुनि इस प्रकार न बोले।

२१२

तहा नईओ पुण्णाओ,
कायतिज्ज त्ति नो वए।

(द ७ ३८ क, ख)

नदियाँ पूर्ण हैं, वे शरीर से पार करने योग्य हैं—मुनि इस प्रकार न बोले।

२१३

नावाहि तारिमाओ त्ति,
पाणिपेज्ज त्ति नो वए।

(द ७ ३८ ग, घ)

नदिया नौका के द्वारा पार करने योग्य हैं, तट पर बैठे हुए प्राणी उसका जल पी सकते हैं—मुनि इस प्रकार न बोले।

२१४

कीरमाण ति वा नच्चा,
सावज्ज न लवे मुणी।

(द ७ ४० ग, घ)

दूसरे के लिए किए जा रहे सावद्य व्यापार को जानकर मुनि सावद्य वचन न बोले।

२१५

सुकडे त्ति सुपक्के त्ति
सुछिन्ने सुहडे मडे।
सुनिट्ठिए सुलट्ठे त्ति
सावज्ज वज्जए मुणी।।

(द ७ ४१)

बहुत अच्छा किया है, बहुत अच्छा पकाया है, शाक आदि को बहुत अच्छा छेदा है, (कडवास का) बहुत अच्छा हरण किया है, (घी आदि) बहुत अच्छा भरा है, बहुत अच्छा रस निष्पन्न हुआ है, बहुत ही इष्ट है—मुनि ऐसी सावद्य भाषा का वर्जन करे।

२१६

अचक्कियमवत्तव्व
अचित चेव नो वए।

(द ६ ४३ ग, घ)

यह वस्तु अभी बेचने योग्य नहीं है, इसका गुण-वर्णन नहीं किया जा सकता, वह अचिन्त्य है—साधु इस प्रकार न कहे।

२१७

सव्वमेय वइस्सामि।
सव्वमेय त्ति नो वए।।

(द ७ ४४ क, ख)

मै यह सब कह दूगा यह सर्व है—ज्यो-का-त्यो है, मुमुक्षु इस प्रकार न बोले।

२१८

अणुवीइ सव्व सव्वत्थ।
एव भासेज्ज पन्नव।।

(द ७ ४४ ग, घ)

सर्वत्र—सब प्रसगो मे सर्व वचन—विधियो का अनुचिन्तन कर प्रज्ञावान् पुरुष जैसे पाप का आगमन न हो वैसे बोले।

२१९

इम गेण्ह इम मुच,
पणिय नो वियागरे।

(द ७ . ४५ ग, घ)

इस पण्य-वस्तु को खरीद लो इसको बेच डालो—साधु ऐसी भाषा न बोले।

२२०

कए वा विक्कए वि वा।
अणवज्ज वियागरे।।

(द ७ ४६ ख घ)

क्रय या विक्रय के प्रसग मे मुनि अनवद्य वचन बोले।

२२१

कया णु होज्ज एयाणि,
मा वा होउ त्ति नो वए।

(द ७ ५१ ग घ)

वायु वर्षा गर्मी, सर्दी, क्षेम, सुभिक्ष और शिव—ये कब होगे अथवा ये न हो तो अच्छा रहे—इस प्रकार न कहे।

२२२

भासाए दोसे य गुणे य जाणिया।
तीसे य दुट्ठे परिवज्जए सया।।

(द ७ ५६ क ख)

भाषा के दोष और गुणो को जानकर दोषपूर्ण भाषा का जो मुनि सदा वर्जन करता है वह प्रबुद्ध है।

२२३

पुढविदगअगणिमारुय,
तणरुक्ख सबीयगा।

(द ८ २ क, ख)

पृथ्वी, उदक (जल), अग्नि, वायु और बीज पर्यन्त तृण-वृक्ष जीव हैं।

२२४

तसा य पाणा जीव त्ति

(द ८ २ ग)

त्रस प्राणी जीव है।

२२५

पुढवि भित्ति सिल लेलु।
नेव भिदे न सलिहे।

(द ८ ४ क, ख)

सयमी पुरुष पृथ्वी, भित्ति (दरार), शिला और ढेले का भेदन न करे और न उन्हे कुरेदे।

२२६

तिविहेण करणजोएण
सजए सुसमाहिए।।

(द ८ ४ ग, घ)

सुसमाहित सयमी तीन करण और तीन योग से पृथ्वी जीवों के प्रति अहिंसक रहे।

२२७

सुद्धपुढवीए न निसिए
ससरक्खम्मि य आसणे।

(द ८ ५ क, ख)

मुनि शुद्ध पृथ्वी—सचित्त अथवा मुंड पृथ्वी और सचित्त रज से ससृष्ट आसन पर न बैठे।

२२८

पमज्जित्तु निसीएज्जा
जाइत्ता जस्स ओग्गह।।

(द ८ ५ ग, घ)

अचित्त भूमि पर प्रमार्जन कर और वह जिसकी हो उसकी अनुमति ले बैठे।

२२९

सीओदग न सेवेज्जा
सिलवुट्ठ हिमाणि य।

(द ८ ६ क, ख)

सयमी शीतोदक (सचित्त जल), ओले, बरसात के जल और हिम का सेवन न करे।

२३०

उसिणोदग तत्तफासु य
पडिगाहेज्ज सजए।

(द ८ ६ ग, घ)

सयमी तप्त होने पर जो प्रासुक हो गया हो, वैसा जल ले।

२३१

उदउल्ल अप्पणो काय
नेव पुछे न सलिहे।

(द ८ ७ क, ख)

मुनि सचित्त जल से भीगे अपने शरीर को न पोछे और न मले।

२३२

समुप्पेह तहाभूय

नो ण सघट्टए मुणी।।

(द ८ ७ ग, घ)

शरीर को तथाभूत (भीगा हुआ) देखकर उसका स्पर्श न करे।

२३३

न उजेज्जा न घट्टेज्जा

नो ण निव्वावए मुणी।।

(द ८ ८ ग, घ)

मुनि अङ्गार, अग्नि आदि को न प्रदीप्त करे, न स्पर्श करे और न बुझाए।

२३४

न वीएज्ज अप्पणो काय

बाहिर वा वि पोग्गल।।

(द ८ ६ ग, घ)

मुनि वीजन, पत्र, शाखा या पंखे से अपने शरीर अथवा बाहरी पुद्गलो पर हवा न डाले।

२३५

गहणेसु न चिट्ठेज्जा
बीएसु हरिएसु वा।

(द ८ ११ क, ख)

मुनि वन-निकुञ्ज के बीच, बीज और हरित आदि पर खडा न रहे।

२३६

तणरुक्ख न छिंदेज्जा
फल मूल व कस्सई।

(द ८ १० क, ख)

मुनि तृण, वृक्ष तथा किसी भी फल या मूल का छेदन न करे।

२३७

आमग विविह बीय
मणसा वि न पत्थए।।

(द ८ १० ग, घ)

मुनि विविध प्रकार के सचित्त बीजो की मन से भी इच्छा न करे।

२३८

अट्ठ सुहुमाइ पेहाए
आस चिट्ठ सएहि वा।।

(द ८ १३ क, घ)

संयमी आठ प्रकार के सूक्ष्म जीवों को देखकर बैठे, खडा हो और सोए।

२३९

सिणेह पुप्फसुहुम च
पाणुत्तिग तहेव य।

(द ८ १५ क, ख)

स्नेह, पुष्प, प्राण, उत्तिङ्ग—

२४०

पणग बीय हरिय च
अडसुहुम च अट्ठम।।

(द ८ १५ ग, घ)

तथा काई, बीज, हरित और अण्ड—ये आठ प्रकार के सूक्ष्म जीव हैं।

२४१

एवमेयाणि जाणित्ता

सव्वभावेण सजए।।

(द ८ १६ क, ख)

इस प्रकार इन सूक्ष्म जीवो को सब प्रकार से जानकर मुनि सयत हो।

२४२

ध्रुव च पडिलेहेज्जा

जोगसा पायकबल।

(द ८ १७ क, ख)

मुनि पात्र, कम्बल आदि का नियत समय प्रमाणोपेत प्रतिलेखन करे।

२४३

फासुय पडिलेहित्ता

परिट्ठावेज्ज सजए।

(द ८ १८ ग, घ)

सयमी मुनि प्रासुक भूमि का प्रतिलेखन कर वहा उच्चार आदि का उत्सर्ग करे।

•

२४४

न य दिट्ठं सुयं सव्वं
भिक्खू अक्खाउमरिहइ।

(द ८ २० ग, घ)

बहुत सुना जाता है, बहुत देखा जाता है। सब देखे और सुने को कहना भिक्षु के लिए उचित नहीं।

२४५

सुयं वा जइ वा दिट्ठं
न लवेज्जोवघाइयं।

(द ८ २१ क, ख)

सुना या देखा हुआ औपघातिक वचन साधु न कहे।

२४६

न य केणइ उवाएणं
गिहिजोगं समायरे।।

(द ८ २१ ग, घ)

साधु किसी उपाय से गृहस्थोचित कर्म का आचरण न करे।

२४७

पुट्ठो वा वि अपुट्ठो वा
लाभालाभ न निद्दिसे।

(द ८ २२ ग, घ)

पूछने पर या बिना पूछे आहार मिला है या नहीं मिला—यह न कहे।

२४८

चरे उछ अयपिरो

(द ८ २३ ख)

वाचालता से रहित होकर उञ्छ[1] ग्रहण करे।

२४६

अफासुय न भुजेज्जा
कीयमुद्देसियाहड।

(द ८ २३ ग, घ)

अप्रासुक, क्रीत, औद्देशिक और आहृत आहार आ जाय तो न खाये।

२५०

मुहाजीवी असबद्धे
हवेज्ज जगनिस्सिए।

(द ८ २४ ग, घ)

वह मुधाजीवी, असबद्ध और लोकआश्रित हो।

१ अनेक घरो से थोडा—थोडा आहार लेना।

२५१

अल्लीणगुत्तो निसिए
सगासे गुरुणो मुणी।

(द ८ ४४ ग, घ)

शिष्य आलीन और गुप्त (मन और काया से सयत) होकर गुरु के समीप बेठे।

२५२

त परिगिज्झ वायाए
कम्मुणा उववायए।

(द ८ ३३ ग, घ)

गुरु के वचन को वाणी से ग्रहण कर कर्म से उसका आचरण करे।

२५३

न पक्खओ न पुरओ
नेव किच्चाण पिट्ठओ।

(द ८ ४५ क, ख)

आचार्यो के बराबर न बैठे, आगे और पीछे भी न बैठे।

२५४

न य उरु समासेज्जा
चिट्ठेज्जा गुरुणतिए।

(द ८ ४५ ग, घ)

गुरु के समीप उनके ऊरु से अपना ऊरु सटाकर न बैठे।

२५५

वइविक्खलिय नच्चा
न त उवहसे मुणी।

(द ८ ४६ ग, घ)

किसी को बोलने मे स्खलित जानकर भी मुनि उसका उपहास न करे।

२५६

अन्नट्ठ पगड लयण
भएज्ज सयणासण।

(द ८ ५१ क, ख)

मुनि अन्यार्थ-प्रकृत (दूसरो के लिए बने हुए) गृह, शयन और आसन का सेवन करे।

२५७

कोह माण च माय च
लोभ च पाववड्ढण।

(द ८ ३६ क, ख)

क्रोध, मान, माया और लोभ--इनमे से प्रत्येक पाप को बढाने वाला है।

२५८

जुत्तो य समणधम्मम्मि
अट्ठ लहइ अणुत्तर।

(द ८ ४२ ग, घ)

श्रमण धर्म मे लगा हुआ मुनि अनुत्तर-फल को प्राप्त होता है।

२५९

जोग च समणधम्मम्मि
जुजे अणलसो धुव।

(द ८ ४२ क, ख)

मुनि आलस्य रहित हो। वह योग (मन, वचन और काया) को सदा श्रमण-धर्म मे नियोजित करे।

२६०

उच्चारभूमिसपन्न
इत्थीपसुविवज्जिय।

(द ८ ५१ ग, घ)

मुनि का स्थान मल-मूत्र विसर्जन की भूमि से युक्त और स्त्री-पशु से रहित होना चाहिए।

२६१

विवित्ता य भवे सेज्जा
नारीण न लवे कह।

(द ८ ५२ क, ख)

मुनि एकान्त स्थान हो वहा केवल स्त्रियो के बीच व्याख्यान न दे।

२६२

गिहिसथव न कुज्जा।

(द ८ ५२ ग)

मुनि गृहस्थो के साथ परिचय न करे।

२६३

कुज्जा साहूहि सथव।

(द ८ ५२ घ)

मुमुक्षु साधुओ से ही परिचय करे।

२६४

जाए सद्धाए निक्खतो
तमेव अणुपालेज्जा।

(द ८ ६० क, ग)

साधु ने जिस श्रद्धा से घर से निकलकर संयम ग्रहण किया, उसी श्रद्धा के साथ उसका पालन करे।

२६५

परियायट्ठाणमुत्तम।

(द ८ ६० ख)

प्रव्रज्या स्थान उत्तम है।

२६६

गुणे आयरियसम्मए।

(द ८ ६० घ)

मुनि आचार्य-सम्मत गुणो की आराधना मे सदा श्रद्धाशील रहे।

२६७

हीलति मिच्छ पडिवज्जमाणा
करेंति आसायण ते गुरूण।

(द ६ (१) २ ग, घ)

जो शिष्य (गुरु मदबुद्धि है, अल्पवयस्क है, अल्पश्रुत है, ऐसा समझ) उसके उपदेश को मिथ्या प्रतिपादित करते हुए उसकी अवहेलना करते हैं, वे गुरु की आशातना करते हैं।[1]

[1] गुरु के प्रति विनय का भग

२६८

पगईए मदा वि भवति एगे
डहरा वि य जे सुयबुद्धोववेया।

(द ६ (१) ३ क, ख)

कई आचार्य वृद्ध होते हुए भी प्रकृति से ही मन्द[1] होते हैं और कई अल्पवयस्क होते हुए भी श्रुत और बुद्धि से सम्पन्न होते हैं।

२६६

आयारमता गुणसुट्ठिअप्पा
जे हीलिया सिहिरिव भास कुज्जा।

(द. ६ (१) ३ ग, घ)

आचारवान् और गुणो से सुस्थितात्मा आचार्य (भले फिर वे मन्द हो या प्राज्ञ) अवहेलना प्राप्त होने पर गुण-राशि को उसी प्रकार भस्म कर डालते हैं जिस प्रकार अग्नि ईंधन-राशि को।

२७०

ये यावि नाग डहर ति नच्चा
आसायए से अहियाय होइ।

(द ६ (१) ४ क, ख)

सर्प छोटा है—यह मान कर जो कोई उसकी आशातना[2] करता है, वह सर्प उसके अहित के लिए होता है।

---

१ अल्प बुद्धि वाला (सत्प्रज्ञाविकल)।

२ कदर्थना।

२७१

एवायरिय पि हु हीलयतो।
नियच्छई जाइपह खु मदे।

(द ६ (१) ४ ग, घ)

इसी प्रकार (अल्पवयस्क) आचार्य की भी अवहेलना करने वाला मंद शिष्य जातिपथ[1]—संसार मे परिभ्रमण करता है।

२७२

आसीविसो यावि पर सुरुट्ठो
किं जीवनासाओ पर नु कुज्जा।

(द ६ (१) ५ क, ख)

आशीविष[2] सर्प अत्यन्त रुष्ट हो जाने पर भी जीवन का अंत करने से अधिक क्या कर सकता है ?

२७३

आयरियपाया पुण अप्पसन्ना
अबोहिआसायण नत्थि मोक्खो।

(द ६ (१) ५ ग घ)

किन्तु आचार्यपाद अप्रसन्न होने पर अबोधि करते हैं (बोधि-लाभ का नाश होता है) अत गुरु की आशातना से मोक्ष नहीं मिलता।

---

१ ससार अथवा जीव योनिय जातिमार्ग ससार। — (जि चू)

२ जिसकी दाढ मे विष हो वह सर्प।

२७४

जो पावग जलियमवक्कमेज्जा
एसोवमासायणया गुरूण।

(द ९ (१) ६ क, घ)

मानो कोई जलती अग्नि को लांघता है, यह उपमा गुरु की आशातना करने वाले पर लागू होती है।

२७५

आसीविस वा वि हु कोवएज्जा
एसोवमासायणया गुरूण।

(द ९ (१) ६ ख, घ)

मानो कोई आशीविष सर्प को कुपित करता है, यह उपमा गुरु की आशातना करने वाले पर लागू होती है।

२७६

सिया हु से पावय नो डहेज्जा
न यावि मोकखो गुरुहीलणाए।

(द ९ (१) ७ क, घ)

कदाचित् अग्नि न जलाए, पर गुरु की अवहेलना से मोक्ष सम्भव नहीं।

२७७

आसीविसो वा कुविओ न भक्खे
न यावि मोक्खो गुरुहीलणाए।

(द ६ (१) ७ ख, घ)

कदाचित् आशीविष सर्प कुपित होने पर भी न डसे, पर गुरु की अवहेलना से मोक्ष सम्भव नहीं।

२७८

सिया विस हलाहल न मारे
न यावि मोक्खो गुरुहीलणाए।

(द ६ (१) ७ ग, घ)

कदाचित् हलाहल विष न मारे, पर गुरु की अवहेलना से मोक्ष सम्भव नहीं।

२७९

जो पव्वय सिरसा भेत्तुमिच्छे,
एसोवमासायणया गुरूण।

(द ६ (१) ८ क, घ)

मानो कोई सिर से पर्वत का भेदन करने की इच्छा करता है, यह उपमा गुरु की आशातना करने वाले पर लागू होती है।

२८०

सुत्तं व सीहं पडिबोहएज्जा
एसोवमासायणया गुरूणं।

(द ९ (१) : ८ ख, घ)

मानो कोई सोए हुए सिंह को जगाता है, गुरु की आशातना करने वाले पर यह उपमा लागू होती है।

२८१

जो वा दए सत्तिअग्गे पहारं
एसोवमासायणया गुरूणं।

(द ९ (१) : ८ ग, घ)

मानो कोई भाले की नोक पर प्रहार करता है, गुरु की आशातना करने वाले पर यह उपमा लागू होती है।

२८२

सिया हु सीसेण गिरिं पि भिंदे
न यावि मोक्खो गुरुहीलणाए।

(द ९ (१) : ९ क, घ)

कदाचित् कोई सिर से पर्वत को भी भेद डाले, पर गुरु की अवहेलना से मोक्ष सम्भव नहीं।

२८३

सिया हु सीहो कुविओ न भक्खे
न यावि मोक्खो गुरुहीलणाए।

(द ६ (१) ६ ख, घ)

कदाचित् सिंह कुपित होने पर भी न खाए पर गुरु की अवहेलना से मोक्ष सम्भव नहीं है।

२८४

सिया न भिंदेज्ज व सत्तिअग्गं
न यावि मोक्खो गुरुहीलणाए।

(द ६ (१) ६ ग, घ)

कदाचित् भाले की नोक भेदन न करे, पर गुरु की अवहेलना से कदापि मोक्ष सम्भव नहीं है।

२८५

जे मे गुरू सययमणुसासयंति
ते हं गुरू सययं पूययामि।

(द ६ (१) १३ ग, घ)

जो गुरु मुझे लज्जा, दया, संयम और ब्रह्मचर्य की सतत शिक्षा देते हैं, उनकी मैं सतत पूजा करता हूं।

२८६

सुस्सूसए आयरियप्पमत्तो।

(द ६ (१) १७ ख)

शिष्य आचार्य की अप्रमत्त भाव से शुश्रूषा करे।

२८७

आराहइत्ताण गुणे अणेगे
से पावई सिद्धिमणुत्तर।

(द ६ (१) १७ ग, घ)

आचार्य की शुश्रूषा करने से वह अनेक गुणो की आराधना कर अनुत्तर सिद्धि को प्राप्त करता है।

२८८

जेण कित्ति सुयं सिग्घ
निस्सेस चाभिगच्छई।

(द ६ (२) २ ग, घ)

विनय के द्वारा मुनि कीर्ति, श्लाघनीय श्रुत और समस्त इष्ट तत्त्वो को प्राप्त होता है।

२८६

आयरिया ज वए भिक्खू
तम्हा त नाइवत्तए।

(द ६ (२) १६ ग, घ)

इसलिए आचार्य जो कहे भिक्षु उसका उल्लघन न करे।

२६३

आलोइय इगियमेव नच्चा
जो छन्दमाराहयइ स पुज्जो।

(द ६ (३) १ ग, घ)

जो आचार्य के आलोकित और इगित को जानकर उसके अभिप्राय की आराधना करता है, वह पूज्य है।

२६४

आयारमट्ठा विणय पउजे।

(द ६ (३) २ क)

आचार के लिए विनय का प्रयोग करे।

२६५

गुरु तु नासाययई स पुज्जो।

(द ६ (३) २ घ)

जो गुरु की आशातना नहीं करता, वह पूज्य है।

२६६

राइणिएसु विणय पउजे
डहरा वि य जे परियायजेट्ठा।

(द ६ (३) ३ क, ख)

जो अल्पवयस्क होने पर भी दीक्षा मे ज्येष्ठ होते हैं—उन पूजनीय साधुओ के साथ विनयपूर्ण व्यवहार करना चाहिए।

२६७

ओवावयं वक्ककरे स पुज्जो।

(द ६ (३) ३ घ)

जो गुरु के कहने के अनुसार करता है, वह पूज्य है।

२६८

अन्नायउछ चरई विसुद्ध
जवणट्ठया समुयाण च निच्च।

(द ६ (३) ४ क, ख)

साधु जीवन-यापन के लिए सदा अपना परिचय न देते हुए विशुद्ध उञ्छ की सामुदायिक रूप से चर्या करता है।

२६९

अलद्धुय नो परिदेवएज्जा
लद्धु न विकत्थयई स पुज्जो।

(द ६ (३) ४ ग, घ)

जो भिक्षा न मिलने पर खिन्न नहीं होता और मिलने पर श्लाघा नहीं करता, वह पूज्य है।

३००

अलोलुए अक्कुहए अमाई
अकोउहल्ले य सया स पुज्जो।

(द ६ (३) १० क, घ)

जो आहार और देहादि मे आसक्त नहीं होता, चमत्कार प्रदर्शित नहीं करता, माया नहीं करता, कुतूहल नहीं करता, वह पूज्य है।

३०१

अपिसुणे यावि अदीणवित्ती।

(द ६ (३) १० ख)

जो चुगली नहीं करता, दीनवृत्ति नहीं होता, वह पूज्य है।

३०२

ते माणए माणरिहे तवस्सी
जिइदिए सच्चरए स पुज्जो।

(द ६ (३) १३ ग, घ)

जो आचार्य अपने शिष्यो को योग्य मार्ग मे स्थापित करते हैं उन माननीय, तपस्वी, जितेन्द्रिय और सत्यरत आचार्य का जो सम्मान करता है, वह पूज्य है।

३०३

अणुसासिज्जंतो सुस्सूसइ।

(द ९ (४) सू ३ (१))

शिष्य आचार्य द्वारा अनुशासित किये जाने पर उसे सुनता है। यह विनय-समाधि है।

३०४

सम्मं सपडिवज्जइ।

(द ९ (४) सू ३ (२))

शिष्य अनुशासन को सम्यक् रूप से स्वीकार करता है। यह विनय-समाधि है।

३०५

वेयमाराहयइ।

(द ९ (४) सू ३ (३))

शिष्य वेद (ज्ञान) की आराधना करता है। यह विनय-समाधि है।

३०६

जाइमरणाओ मुच्चई
इत्थ च चयइ सव्वसो।

(द ६ (४) ७ क, ख)

सुविशुद्ध और सुसमाहित चित्त वाला साधु जन्म-मरण से मुक्त होता है तथा नरक आदि अवस्थाओ को पूर्णत त्याग देता है।

३०७

सिद्धे वा भवइ सासए
देवे वा अप्परए महिड्ढिए।

(द ६ (४) ७ ग, घ)

इस प्रकार वह या तो शाश्वत सिद्ध होता है अथवा अल्प-कर्म वाला महर्द्धिक देव होता है।

३०८

पुढवि न खणे न खणावए।

(द १० २ क)

साधु पृथ्वी का खनन नहीं करता और न करवाता हे।

३०६

सीओदग न पिए न पियावए।

(द १० २ ख)

साधु शीतोदक सचित्त जल न पीता है और न पिलाता है।

३१०

अगणिसत्थ जहा सुनिसिय
त न जले न जलावए जे स भिक्खू।

(द १० २ ग, घ)

जो शस्त्र के समान सुतीक्ष्ण अग्नि को न जलाता है और न जलवाता है—वह भिक्षु है।

३११

अनिलेण न वीए न वीयावए।

(द. १० . ३ क)

साधु पखे आदि से हवा न करता है और न करवाता है।

३१२

हरियाणि न छिंदे न छिंदावए।

(द. १० : ३ ख)

साधु हरित का न छेदन करता है और न करवाता है।

३१३

बीयाणि सया विवज्जयतो
सच्चित्त नाहारए जे स भिक्खू।

(द १० ३ ग, घ)

जो बीजो का सदा विवर्जन करता है, जो सचित्त का आहार नहीं करता—वह भिक्षु है।

३१४

नो वि पए न पयावए जे स भिक्खू।

(द १० ४ घ)

जो स्वय न पकाता है और न दूसरो से पकवाता है—वह भिक्षु है।

३१५

होही अट्ठो सुए परे वा
त न निहे न निहावए जे स भिक्खू।

(द १० ८ ग, घ)

आहार को प्राप्त कर—यह कल या परसो काम आएगा—इस विचार से जो सन्निधि (सचय) न करता है और न करवाता है—वह भिक्षु है।

३१६

छदिय साहम्मियाण भुजे।

(द १० ६ ग)

साधु अपने साधर्मिको को निमत्रित कर भोजन करता है।

३१७

भोच्चा सज्झायरए य जे स भिक्खू।

(द १० ६ घ)

जो भोजन कर चुकने पर स्वाध्याय मे रत रहता है—वह भिक्षु है।

३१८

न सरीर चाभिकखई जे स भिक्खू।

(द १० १२ घ)

जो शरीर की भी आकाक्षा नहीं करता—वह भिक्षु है।

३१६

असइ वोसट्ठचत्तदेहे।

(द १० १३ क)

साधु बार-बार देह का व्युत्सर्ग और त्याग करता है।

३२०

विइत्तु जाइमरण महब्भय

तवे रए सामणिए जे स भिक्खू।

(द १० १४ ग, घ)

जो जन्म-मरण को महाभय जानकर तप और श्रामण्य मे रत रहता है—वह भिक्षु है।

३२१

सुत्तत्थ च वियाणई जे स भिक्खू

(द १० १५ घ)

जो सूत्र और अर्थ को अच्छी तरह जानता है—वह भिक्षु है।

३२२

कयविक्कयसन्निहिओ विरए
सव्वसगावगए य जे स भिक्खू।

(द १० १६ ग, घ)

जो क्रय-विक्रय और सन्निधि से विरत है, जो सब प्रकार के सगो से रहित है—वह भिक्षु है।

३२३

उछ चरे जीविय नाभिकखे।

(द १० १७ ख)

साधु उञ्छचारी होता है। वह असंयम जीवन की आकाक्षा नहीं करता।

३२४

अलोल भिक्खू न रसेसु गिध्दे।

(द १० १७ क)

भिक्षु अलोलुप होता है। वह रसों मे गृद्ध नहीं होता।

३२५

इड्ढि च सक्कारण पूयण च
चए ठियप्पा अणिहे जे स भिक्खू।

(द. १० : १७ ग, घ)

जो ऋद्धि, सत्कार और पूजा की स्पृहा का त्याग करता है, जो स्थितात्मा है और जो माया नहीं करता—वह भिक्षु है।

३२६

जाणिय पत्तेय पुण्णपाव
अत्ताण न समुक्कसे जे स भिक्खू।

(द १० १८ ग, घ)

प्रत्येक व्यक्ति के पुण्य-पाप पृथक्-पृथक् होते हैं—ऐसा जानकर जो अपनी बडाई नहीं करता—वह भिक्षु है।

३२७

मयाणि सव्वाणि विवज्जइत्ता
धम्मज्झाणरए जे स भिक्खू।

(द १० १६ ग, घ)

जो सर्व मदो का वर्जन करता हुआ धर्म-ध्यान मे रत रहता है—वह भिक्षु है।

३२८

निक्खम्म वज्जेज्ज कुसीललिग।
न यावि हस्सकुहए जे स भिक्खू।

(द १० २० ग, घ)

जो प्रव्रजित होकर कुशील-लिग का वर्जन करता है, जो दूसरो को हसाने के लिए कुतूहलपूर्ण चेष्टा नहीं करता—वह भिक्षु है।

३२९

त देहवास असुइ असासय
सया चए निच्च हियट्ठियप्पा।
छिदित्तु जाईमरणस्स बधण
उवेइ भिक्खू अपुणरागम गइ।।

(द १० २१)

अपनी आत्मा को सदा शाश्वतहित मे सुस्थित रखने वाला भिक्षु इस अशुचि और अशाश्वत देहवास को सदा के लिए त्याग देता है और वह जन्म-मरण के बन्धन को छेदकर अपुनरागम-गति (मोक्ष) को प्राप्त होता है।

३३०

लहुस्सगा इत्तरिया गिहीण कामभोगा।

(द चू १, सू १ २)

गृहस्थो के काम-भोग, स्वल्प-सार-सहित (तुच्छ) और अल्पकालिक हैं।

३३१

भुजित्तु भोगाइ पसज्झ चेयसा
तहाविह कट्टु असजम बहु।
गइ च गच्छे अणभिज्झिय दुह
बोही य से नो सुलभा पुणो पुणो।।

(द चू १ १४)

धर्म से च्युत मनुष्य स्वच्छद मन से भोगो का सेवन कर अनेक असयम का सचय कर असुन्दर दुःख-जनक अनिष्ट गति मे जाता है। उसे पुन बोधि सुलभ नहीं होती।

३३२

जस्सेवमप्पा उ हवेज्ज निच्छिओ
चएज्ज देह न उ धम्मसासण।
त तारिस नो पयलेति इदिया
उवेतवाया व सुदसण गिरिं।।

(द चू १ १७)

जिसकी आत्मा इस प्रकार दृढ होती है कि देह का त्याग कर दूगा पर धर्म-शासन को नहीं छोडूगा उस पुरुष, उस साधु को इन्द्रिया उसी प्रकार विचलित नहीं कर सकतीं जिस प्रकार वेगपूर्ण गति से आता हुआ महावायु सुदर्शन गिरि को।

३३३

काएण वाया अदु माणसेण
तिगुत्तिगुत्तो जिणवयणमहिट्ठिजासि।

(द चू १ १८ ग, घ)

मुमुक्षु, त्रिगुप्तियो (मन, वचन और काया से) गुप्त होकर जिनवाणी का आश्रय ले।

३३४

चरिया गुणा य नियमा य
होंति साहूण दट्ठव्वा।

(द चू २ ४ ग, घ)

सवर मे प्रभूत समाधि रखने वाले साधुओ को चर्या, गुणो तथा नियमो की ओर दृष्टिपात करना चाहिए।

३३५

अणिएयवासो समुयाणचरिया
अन्नायउछ पइरिक्कया य।

(द चू २ ५ क, ख)

अनिकेतवास, समुदान-चर्या, अज्ञात कुलो से भिक्षा, एकान्तवास—यह विहार-चर्या मुनियो के लिए प्रशस्त है।

३३६

अप्पोवही कलहविवज्जणा य
विहारचरिया इसिण पसत्था।

(द चू २ ५ ग, घ)

उपकरणो की अल्पता ओर कलह का वर्जन—यह विहार-चर्या (जीवन-चर्या) ऋषियो के लिए प्रशस्त है।

३३७

गिहिणो वेयावडिय न कुज्जा।

(द चू २ ६ क)

साधु गृहस्थ का वैयापृत्य न करे।

३३८

अभिवायण वदण पूयण च।

(द चू २ ६ ख)

साधु गृहस्थ का अभिवादन, वन्दन और पूजन न करे।

३३९

असकिलिट्ठेहिं सम वसेज्जा
मुणी चरित्तस्स जओ न हाणी।

(द चू २ ६ ग, घ)

मुनि सक्लेश-रहित (राग-द्वेष रहित) साधुओ के साथ रहे जिससे चरित्र की हानि न हो।

३४०

जया य वदिमो होइ
पच्छा होइ अवदिमो।

(द चू १ ३ क, ख)

प्रव्रजितकाल मे साधु वदनीय होता है, वही उत्प्रव्रजित होकर अवन्दनीय हो जाता है।

३४१

देवलोगसमाणो उ
परियाओ रयाण महेसिण।

(द चू १ १० क, ख)

सयम मे रत महर्षियो के लिए मुनि–पर्याय देवलोक के समान सुखद होता है।

३४२

अरयाण तु
महानिरयसारिसो।

(द चू १ १० ग, घ)

जो सयम मे रत नहीं होते, उनके लिए वही मुनि-जीवन महानरक के समान होता है।

३४३

अमरोवम जाणिय सोक्खमुत्तम
रयाण परियाए तहारयाण।
निरओवम जाणिय दुक्खमुत्तम
रमेज्ज तम्हा परियाय पडिए।।

(द चू १ ११)

चरित्र-पर्याय में रत मनुष्यो का सुख देवता के समान उत्तम समझकर तथा उसमे अननुरक्त मनुष्य का दु ख नरक के समान तीव्र जानकर पण्डित मुनि चरित्र-पर्याय मे रमण करे।

३४४

धम्माउ भट्ठ सिरिओ ववेय
जन्नग्गि विज्झायमिव प्पतेय।
हीलति ण दुव्विहिय कुसीला
दाढुद्धिय घोरविस व नाग।।

(द चू १ १२)

धर्म से भ्रष्ट, आचार-रहित, दुर्विहित साधु की निन्दनीय आचार वाले लोग भी वैसे ही निन्दा करते हैं जैसे साधारण लोग अल्प-तेज बुझती हुई यज्ञाग्नि एव दाढ निकले हुए घोर विषधर सर्प की।

३४५

इहेवधम्मो अयसो अकित्ती
दुन्नामधेज्ज च पिहुज्जणम्मि।
चुयस्स धम्माउ अहम्मसेविणो
सभिन्नवित्तस्स य हेट्ठओ गई।।

(द चू १ : १३)

धर्म से च्युत, अधर्म-सेवी और चारित्र का खण्डन करने वाले साधु की अधोगति होती है।

धर्म से भ्रष्ट साधु का इस लोक मे अयश, अकीर्ति और साधारण लोगो मे भी दुर्नाम होता है।

३४६

एक्को वि पावाइ विवज्जयतो
विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो।

(द चू २ १० ग, घ)

निपुण साथी न मिले तो पाप-कर्मो का वर्जन करता हुआ काम-भोगो मे अनासक्त रह मुनि अकेला ही विहार करे।

३४७

सुत्तस्स मग्गेण चरेज्ज भिक्खू
सुत्तस्स अत्थो जह आणवेइ।

(द चू २ ११ ग, घ)

भिक्षु सूत्रोक्त मार्ग से चले, सूत्र का अर्थ जिस प्रकार आज्ञा दे, वैसे चले।

३४८

ह भो ! दुस्समाए दुप्पजीवी।

(द चू १ सू १ १)

अहो! इस दु ख बहुत पाचवे आरे मे लोग बडी कठिनाई मे जीविका चलाते हैं।

३४६

लहुस्सगा इत्तरिया गिहिण कामभोगा।

(द चू १, सू १ २)

गृहस्थो के कामभोग स्वल्प-सार-हित (तुच्छ) और अल्पकालिक हैं।

३५०

अणागय नो पडिबध कुज्जा।

(द चू २ १३ घ)

अनागत का प्रतिबन्ध न करे—असयम मे न बधे—निदान न करे।

३५१

इमे य मे दुक्खे न चिरकालोवट्ठाई भविस्सइ।

(द चू १, सू १ ४)

कष्ट के समय मनुष्य सोचे "यह मेरा परीषह-जनित दुःख चिरकाल पर्यंत नहीं रहेगा।"

३५२

दुल्लभे खलु भो ?
गिहीण धम्मे गिहिवासमज्झे वसताण।

(द चू १, सू १ ८)

अहो ! गृहवास मे रहते हुए गृहियो के लिए धर्म का स्पर्श निश्चय ही दुर्लभ है।

३५३

सोवक्केसे गिहवासे
निरुवक्केसे परियाए।

(द चू १, सू १ ११)

गृहवास क्लेश-सहित है और मुनि-पर्याय क्लेश-रहित।

३५४

बधे गिहवासे
मोक्खे परियाए।

(द चू १, सू १ १२)

गृहवास बन्धन है और मुनि-पर्याय मोक्ष।

३५५

सावज्जे गिहवासे
अणवज्जे परियाए।

(द चू १, सू १ १३)

गृहवास सावद्य है और मुनि-पर्याय अनवद्य।

३५६

विवित्ताइ सयणासणाइ सेविज्जा,
से निग्गथे। नो इत्थी पसुपडगससत्ताइ
सयणासणाइ सेवित्ता हवइ से निग्गथे।

(उत्त १६ ३)

जो एकांत शयन और आसन का सेवन करता है, वह निर्ग्रन्थ है। निर्ग्रन्थ स्त्री, पशु और नपुंसक से आकीर्ण शयन और आसन का सेवन नहीं करता।

३५७

नो इत्थीण कह कहित्ता हवइ,
से निग्गथे।

(उत्त १६ ४)

जो केवल स्त्रियो के बीच कथा नहीं करता वह निर्ग्रन्थ है।

३५८

नो इत्थीहि सद्धि सन्निसेज्जागए
विहरित्ता हवइ, से निग्गथे।

(उत्त १६ ५)

जो स्त्रियो के साथ पीठ आदि एक आसन पर नहीं बैठता, वह निर्ग्रन्थ है।

३५६

नो इत्थीण इदियाइ मणोहराइ
मणोरमाइ आलोइत्ता निज्झाइत्ता
हवइ से निग्गंथे।

(उत्त १६ · ६)

जो स्त्रियो की मनोहर और मनोरम इन्द्रियों को दृष्टि गडाकर नहीं देखता, उनके विषय मे चिन्तन नहीं करता वह निर्ग्रन्थ है।

३६०

नो विलवियसद्द वा, सुणेत्ता हवइ,
से निग्गथे।

(उत्त १६ · ७)

जो स्त्रियों के विलाप के शब्दो को नहीं सुनता वह निर्ग्रन्थ है।

३६१

नो पुव्वरय पुव्वकीलिय अणुसरित्ता
हवइ, से निग्गथे।

(उत्त १६ ८)

जो गृहवास मे की हुई रति और क्रीडा का अनुस्मरण नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है।

३६२

नो पणीय आहार आहारित्ता
हवइ, से निग्गथे।

(उत्त. १६ : ६)

जो प्रणीत आहार का सेवन नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है।

३६३

नो अइमायाए पाणमोयणं आहारेत्ता
हवइ, से निग्गंथे।

(उत्त १६ १०)

जो मात्रा से अधिक नहीं पीता और नहीं खाता, वह निर्ग्रन्थ है।

३६४

नो विभूसाणुवाई हवइ, से निग्गथे।

(उत्त १६ ११)

जो विभूषा नहीं करता, शरीर को नहीं सजाता, वह निर्ग्रन्थ है।

३६५

नो सद्दरूवरसगधफासाणुवाई
हवइ, से निग्गथे।

(उत्त १६ १२)

जो शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श मे आसक्त नहीं होता, वह निर्ग्रन्थ है।